विषय-सूच.

संख्या	विषय	

स्वास्थ्य [illegible]

दूसरी पुस्तक

१—ताप और उष्णता

ताप ईथर (सूक्ष्माकाश) का एक विशेष प्रकार का
या तरंग है, जो सूर्य की किरणों के
ताप (अ०गरमी)
से प्रकट होता है और जिसे हमारा शरीर
एक विशेष दशा में अनुभव करता है। जब यह दशा उत्पन्न होती
है तब हम कहते हैं कि इस समय गरमी प्रतीत होती है।

तुम जानते हो कि प्रकृति ने हमारे शरीर में भाँति भाँति की
ज्ञान शक्तियाँ और उनके यन्त्र (इन्द्रियाँ)
ताप का अनुभव
दिए हैं। इन सब का मस्तिष्क से
है। आँखें देखने का काम करती हैं। जीभ पदार्थों का स्वाद
बताती है। कान वायु में प्रकम्पन की दशा को प्रकट करते हैं।
इत्यादि। इसी प्रकार हमारे सम्पूर्ण शरीर में महीन महीन नसें

फैली हुई हैं, जो गरमी और ठंडक की दशा का ज्ञान करती है उदाहरणार्थ—आग जलाने से ताप और प्रकट होता है। प्रकाश को आँख देखती है और गरमी को शरीर का प्रत्येक अंग अनुभव करता है। जब यह प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचता है उस समय हमें इन उन बातों का ज्ञान होता है। यदि किसी व्यक्ति का हाथ काट कर आग में डाल दिया जाय तो वह हाथ न तो ताप का अनुभव करेगा और न ठंड का। कारण यह है कि कट जाने के बाद हाथ का सम्बन्ध मस्तिष्क से नहीं रह जाता।

जब आकाश में वायु के ताप का अंश घटने लगता है, तब सर्दी का प्रादुर्भाव होता है। सर्दी से बचने के लिए दो उपाय मुख्य हैं। पहिला ऐसे वस्त्रों को धारण करना, जो देह की उष्णता को देह से बाहर न निकलने दें। दूसरा यह कि चहुं ओर की शीतल वायु को आग जला कर गरम कर दिया जाए। इन कृत्रिम उपायों के अतिरिक्त प्रकृति की ओर से भी वायु को गरम करने का प्रबन्ध है। ताप का यह उपकरण सूर्य है, सूर्य वायु में गरमी का संचार करता है। वे निर्धन लोग जिनके पास शीत से बचाव करने का नहीं है दिन के समय तो धूप से अपने शरीर को सेंकते हैं और रात्रि समय आग जला कर तापते हैं।

आप की

गरमी में दिनों में आस पास की वायु आवश्यकता से अधिक गरम हो जाती है और हमारे शरीर में प्रवेश पाने लगती है। ऐसी

दशा में वायु को ठंडी करने की आवश्यकता होती है। इसके लिये लोग शीतल स्थानों में बैठते हैं और कमरों को वायु को ठंडी करने के लिये खस की टट्टियाँ इत्यादि लगाते हैं।

गरमी या ताप भिन्न भिन्न उपायों से उत्पन्न होता है। सूर्य अग्नि, पृथ्वी की वायु, उष्णवायु आँगारिकाम्लवायु अर्थात् कारबोलिक ऐसिड गैस की अधिकता आदि।

ताप के कारण

तुम जानते हो कि सूर्य आग का गोला है। और सूर्य की किरण आग की ज्वालाएँ हैं। गरमी का नियम है कि वह बाहरी ठंडक की ओर खिंचता है। और इसमें लय हो जाता है। इसके लिए ठंडी वस्तुएँ गरम वस्तुओं के पास गरम होजाती है। और गरम वस्तु को गरमी को सोखने लगती हैं जब दिन को सूर्य की किरणें ठंडी भूमि पर पड़ती हैं तब भूमि किरणों के ताप को ग्रहण करती हैं और तपाने लगती हैं। जब रात्रि के समय सूर्यास्त होता है, तब भूमि के भीतर का ताप बाहर निकलता है और भूमि ठंडी होजाती है।

सूर्य का ताप

यहाँ तुम यह प्रश्न करोगे, कि ग्रीष्म की ऋतुओं में पृथ्वी अधिक गरम क्यों हो जाती है। और जाड़ों में गरमी क्यों घट जाती है। इसका यह उत्तर है कि ऋतु परिवर्तन का सम्बन्ध

किरणों के तिरछेपन से है। क्योंकि पृथ्वी को गति एक नहीं होती। वह अपनी धुरी पर भी घूमती है और सूर्य के चारों ओर भी परिक्रमा करती है, इसलिए ग्रीष्म काल में जब सूर्य की किरणें तिर्छी पड़ती हैं उनसे बना कोण लगभग २३ कला उत्तर पर रहता है और जाड़े की ऋतुओं में लगभग २२ कोण दक्षिण पर।

ग्रीष्म काल में प्रातः काल जब किरणें तिर्छी पड़ती हैं तो ताप कम होता है। परन्तु ज्यों ज्यों सूर्य ऊँचा चढ़ता जाता है और शनैः २ किरणें प्रखर की ओर सीधी हो जाती हैं ताप प्रचण्ड होजाता है। इसी नियम से, भूगोल या पृथ्वी मण्डल के वह स्थल जहाँ सूर्य की किरणें अधिक काल तक सीधी पड़ती हैं अधिक तप्त रहते हैं। और उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव देश पर क्षिति मण्डल की अपेक्षा कहीं अधिक ठंडक होती है। क्योंकि सूर्य की किरणें वहाँ कठिनता से पहुँचती हैं। ऋतु परिवर्तन में यद्यपि सूर्य के ताप का विशेष प्रभाव होता है। लेकिन देश काल आदि वहाँ वहाँ की गरमी में विशेष भाग लेते हैं जैसे—पृथ्वी की रचनात्मक स्थिति जंगल, समुद्र, तटस्थ, स्थान, पार्वत्य प्रदेश आदि।

सूर्य की किरणों में ताप प्रदान की सिवा प्रकृति ने रासायनिक द्रव्य का भी समावेश किया है। यह वनस्पति व जीव वर्ग सब के पोषण में समान रूप से लाभकारी है। अतः जो पौधे धूप नहीं

पाते उनकी पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। यही प्रभाव बच्चों के पर भी पड़ता है। बहुधा इनके शरीर की अस्थियाँ कोमल होकर टेढ़ी पड़ जाती हैं। गले की गिल्टियाँ बढ़ जाती हैं। हृदरोग उत्पन्न होते हैं, कान बहने लगता है आदि।

सूर्य की किरणों का प्रभाव केवल शरीर पर ही नहीं प्रत्युत मस्तिष्क पर भी पड़ता है। जो बच्चे खुले मैदानों में खेलते फिरते हैं उनके देह में फुर्ती और बल भर जाता है) जो प्रफुल्ल रहता है। वे निरालस्य व निरोग रहते हैं। यही है कि खेतों के श्रमजीवी जो सारे दिन खुले मैदान की धूप में काम करते हैं कारखानों के श्रमजीवियों की तुलना में जो छतों के नीचे रहते हैं बहुत बलवान समर्थ और आरोग्य होते हैं। घाम या धूप के लाभ पर विचार करके आधुनिक विज्ञानाचार्यों ने यही बात कृत्रिम सूर्य की ज्योति के लम्पों में प्रकट की है। निदान पता चला कि धूप में बैठने और दौड़ने फिरने से अनेक लाभ हैं।

आग कार्बन और ओषजन (आक्सीजन) के संयोग से पैदा होती है चाहे वह लैम्प या मोम-

आग

बत्ती इत्यादि से पैदा हो चाहे दियासलाई या ईंधन से। आग प्रज्वलित करने के लिये नाना भाँति के ईंधन उपयोग में आते हैं। लकड़ी, कोयला, पत्थर का कोयला, कण्डा

लकड़ी आदि। इन सब वस्तुओं में कारबन का अंश होता है जो जलने के साथ निकलता है। ईंधन के लिये सबसे अच्छा ईंधन वह है जिसमें धुआँ न हो। क्योंकि धुएँ में आंगारिकाम्ल का अंश अधिक मात्रा में होता है जो स्वास्थ्य के लिए महा हानिकारक है, अग्नि प्रज्वलित करने के लिये उत्तम वस्तु अम्बुजन या हैडरोजन है जिससे खूब गरमी प्रकट होती है। लेकिन मूल्यवान पदार्थ होने के कारण लोग इसके स्थान पर कोयला प्रयोग करते हैं जिसमें कारबन और अम्बुज दोनों वायुओं का सम्मिश्रण रहता है, कोयला शुष्क होने के कारण धुआँ कम देता है लकड़ी के ईंधन में धुआँ बहुत होता है। यही दशा पत्थर के कोयले की है। पत्थर के कोयले की आँच बड़ी तेज होती है और आग देर तक ठहरती है, लेकिन इसमें धुआँ बहुत होता है।

विधि—धुआँ कम करने की विधि यह है कि ओषजन का अधिकांश भाग अग्नि में पहुँचाया जाय। इससे अग्नि शीघ्र जलकर ज्वाला निकलने लगती है। कोयला और लकड़ी का कारबन जल जाता है, और धुआँ नहीं होता। कारबन का यह स्वभाव है कि जबतक पर्याप्त ताप न हो, या दूसरे शब्दों में, ओषजन की अधिकता न हो, कभी नहीं जलती। इसलिये हम देखते हैं कि आग को लोग फुकनी से फूंकते या पंखे अथवा धौंकनी से धौंकते हैं और इस प्रकार ओषजन का पुष्कल परिमाण आग में पहुँचाते हैं। इससे आग बहुत जल्दी भड़क पड़ती है।

अग्नि प्रज्वलित होने में वायु का ओषजनीय अंश जलकर नष्ट होता है, और उसके आंगारिकाम्ल का अंश आग से निकल कर वायु में मिल जाता है। तुम जानते हो कि वायु सर्व-व्यापी है। यदि किसी कोठरी की खिड़कियाँ और द्वार बन्द कर लिये जायँ और उसमें आग जलाई जावे, तो कुछ समय के उपरान्त भीतर की वायु का सम्पूर्ण ओषजन-द्रव्य जल जायगा, और उसकी जगह कोठरी-भर में आंगारिकाम्ल की विषैली गैस फैल जाएगी। इसलिए ठंडे देशों में, जहाँ आग सुलगा कर कमरों को गरम करने की आवश्यकता होती है, दीवारों में अँगीठियाँ बनाई जाती हैं। अँगीठी से लेकर छत तक दीवार में पोल रहता है। जब अँगीठी सुलगाई जाती है धुआँ दीवार के द्वारा छत के ऊपर से निकल जाता है। और कमरा स्वच्छ हो जाता है। लोग इन अँगीठियों के पास बैठ कर तापते हैं और स्वास्थ्य सुख भोगते हैं।

इसलिए कमरा बन्द करके उसके अन्दर आग न जलाओ। कमरे के अन्दर पत्थर का कोयला जलाना, भोजन बनाना, सिगड़ी का ईंधन फूँकना, लम्प जलाना या कोई दीपक इत्यादि सब बातें स्वास्थ्य को हानिप्रद हैं। क्योंकि इन सब दशाओं में आंगारिकाम्ल प्रादुर्भूत होता है और कमरे की वायु को अस्वच्छ और दूषित कर डालता है। जिस स्थान पर आग जलाई जाती है, यदि वहाँ धुआँ निकलने का प्रबन्ध न किया जाए, तो

सारी कोठरी धुवाँस जाती है और छत काली हो जाती है। यदि कहीं धुएँ की काजल नीचे गिरने लग जाए, तो नीचे की सारी वस्तुएँ काली-कलुटी हो जाती हैं। जो लोग ऐसे कमरों में सोते हैं, उनके नाक, मुँह और कण्ठ से कालिख के गुच्छे निकलते हैं। प्रायः ऐसा हुआ है कि लोग कमरा बन्द करके लम्प या अँगीठी जलती छोड़कर सो रहे और प्रभात होते-होते सोते-के सोते रह गए।

कण्डों की आग तो सबसे बुरी है, क्योंकि उसमें बड़ा धुआँ होता है। धुएँ वाली आग स्वास्थ्य के लिए अहितकर होने के सिवा काफ़ी गर्म भी नहीं होती।

भूमि के वाष्प से भी ताप उत्पन्न होता है। ग्रीष्म काल में धूप चली जाने पर भी तपः करती है। इसका कारण यह है कि दिन भर के सूर्य का ताप अब बाहर की शुष्क वायु की ओर खींचती है और भूमि ठण्डी होनी आरम्भ होती है। ओस वही वाष्प है जो भूमि से निकल कर बाहर की ठंडी वायु में मिल कर सारे पदार्थों पर जम जाते हैं।

भूमि के वाष्प

सूर्य की किरणें जब आर्द्र वायु में से होकर चलती हैं तो वायु के ताप को ग्रहण करने लगती हैं और वायु सूखने लगती है। लेकिन हवा को तपाने में सूर्य के ताप का इतना अधिक भाग नहीं

तप्त वायु

जितना भूमि का। सूर्य की किरणें भूमि को को तपाती हैं और भूमि को उष्णता वायु को उष्ण करती है, यही कारण है कि ग्रीष्म काल में प्रातः समय किंचित् सरदी पड़ती है और मध्याह्न निकट लू चलने लगती है। अनुभव से देखा गया है और परीक्षाओं से सिद्ध है कि ठंढी वायु उष्ण वायु की अपेक्षा हल्की होती है। इस कारण यह सदा ऊपर को चढ़ती है और ठंडी वायु जो भारी होती है, नीचे रह जाती है। इसलिए जो मकान स्वास्थ्य-रक्षा नियमों के अनुसार बनाये जाते हैं उनमें छत के पास दीवारों में रोशनदान अथवा झरोखे लगाए जाते हैं और नीचे यथास्थान द्वार व खिड़कियाँ रक्खी जाती हैं।

इस भाँति कमरे की उष्ण वायु को निकलते रहने का सुभीता मिलता है। वह ऊपर पहुँच मोक्षों झरोखों द्वारा निकलती रहती है और ठंडी हवा नीचे गच के छिद्रों द्वारा भीतर आती रहती है। तुम पढ़ चुके हो कि सरदी गर्मी को अपनी ओर खींचती है, इसी से ठंडी वायु का पीछा करती है और उसकी उष्णता को मन्द करती रहती है। इसलिए समस्त कमरे की उष्णता का अंश समान रहता है।

सूर्य, अग्नि और पृथ्वी के भाप के सिवा कभी कभी ऑर्गानिक्स्ल गैस रिकल्स की प्रबलता से भी वायु उष्ण हो जाती है। उसका उदाहरण जलसों, ~, नाटकों, मेलों और बन्दद कोठरियों में मिलेगा।

किसी खुले मैदान से बस्ती की ओर जाओ, या किसी खुले स्थान से ऐसी जगह पहुँचो जहाँ बहुत से मनुष्य बैठे हों वहाँ की वायु गर्म जान पड़ेगी। ऐसा क्यों होता है। हम बतला चुके हैं कि हमारे आमाशय में स्वाभाविक ताप विद्यमान है, जिससे हवा के कारबन का अंश जो श्वास के द्वारा हमारे पेट में जाता है बनाए रखता है। इस उष्णता से वह उदर में भोजन पचाता है और उसके अवयव होते हैं कुछ तो ईंधन की भाँति सुलगते हैं और उष्णता पैदा करते हैं और कुछ हमारे शरीर को भिन्न २ आवश्यकताओं को पूरा करते हैं।

तुम जानते हो कि यदि किसी कमरे में आग जलाई जाय तो कमरा गर्म हो जाता है। गर्मी का फल यह होता है कि कमरे की भीतर की वायु गर्म हो जाती है।

निपट यही अवस्था, उदर की है। आमाशय में उष्णता रहती है। श्वास के द्वारा पेट में पहुँची शीतल वायु शरीर में पहुँच कर व्यापक उष्णता के उष्ण हो जाती है। निदान हमारे पेट में उतरने के पश्चात सुलगने लगती है सो रक्त से धुएँ का आविर्भाव होता है। इस लिये भीतर जाने वाली ठंढी वायु के ओषजन के बहुत अंश को जठराग्नि अपने जलने के लिये ले लेती है और उसके ठौर अपने आँगारिकाम्ल

को रक्त में मिला कर पुनः बाहर लौटा देती है। यही है कि साँस लेते समय शुद्ध शीतल वायु पेट में जाती है, परन्तु जो साँस बाहर आती है, उसकी वायु दूषित और उष्ण होती है। इस प्रकार जहाँ मनुष्यों की भीड़ हो अथवा घनी बस्ती हो वहाँ की वायु उष्ण हो जाती है। इसी से रक्षा के सिद्धान्तों में इस बात को विशेष महत्व दिया है कि, ऐसे कमरों में जहाँ अनेक प्राणी सो रहे हों कदापि न सोना चाहिये। क्योंकि उनकी श्वास-प्रश्वास से जो वायु फैलती है वह सारे कमरे में व्यापती है। और सारी वायु को विषाक्त कर डालती है।

भीड़ का प्रभाव

भीड़ या गहन बस्ती की वायु गर्म और विषैली होती है, क्योंकि इसमें कारबन जनित अम्ल अधिक होता है। प्रभाव यह होता है कि सिर में पीड़ा हो जाती है। सिर घूमता है। मतली होती है, कभी कभी तो कै दस्त होने लगता है। लोग मूर्छित हो जाते हैं और कभी कभी दम घुट कर मृत्यु तक हो जाती हैं। इसलिये भारी भीड़ में वायु की स्वच्छता और प्रचुरता पर ध्यान रखना चाहिये। इस श्रेणी के रोगियों को खुले स्थान में लाकर शीतल जल से मुँह पर छींटे मारे और मुख पर पखा झलना अच्छा है।

जो लोग ऐसे स्थानों में रहते हैं जहाँ के वायु मण्डल में

आँगारिकाम्ल की भारी मात्रा हो, उनका स्वास्थ्य बिगड़ है। इसलिये मुहल्लों में रहने; संकीर्ण अथवा अन्धकार वाली कोठरियों में उठने बैठने से स्वास्थ्य को हानी पहुँचती है। देह निर्बल व क्षीण हो जाता है। भोजन ठीक नहीं पचता, शुद्ध रक्त उत्पन्न नहीं होता। क्षुधा मन्द पड़ जाती है। नींद नहीं आती। चित्त व्याकुल रहता है। काम काज नहीं होता। परिणाम यह होता है कि कुछ काल पश्चात् नए नए रोग उठ खड़े होते हैं, और रोगी क्षय, ज्वर, खाँसी, शीतला आदि में रुग्ण होकर परलोकगामी होता है। बच्चों के स्वास्थ्य पर तो दूषित वायु का प्रभाव विशेष रूप से होता है॥

अभ्यास

(१) ठंडक और उष्णता लगने से तुम क्या समझते हो? ऋतु परिवर्तन कैसे होता है?

(२) ताप क्या वस्तु है और कितनी व्याधियों से प्राप्त हो सकता है?

(३) सूर्य की किरणों का वर्णन करो।

(४) और शीत का अनुभव किस भाँति होता है? और की आवश्यकता किस समय होती है?

(५) वायु किस प्रकार तपती है और गरमी पर सूर्य का क्या प्रभाव पड़ता है?

(६) ग्रीष्म-काल में भी प्रातः समय ठंढ क्यों होती है?

(७) हेमन्त आदि ऋतुओं में शीत और ग्रीष्म में ताप क्यों पड़ता है ?

(८) ध्रुव में कौन सी ऋतु रहती है और क्यों ?

(९) ऋतु के बदलने में देश काल सम्बन्धी क्या होता है ?

(१०) आग किस तरह जलती है ?

(११) शुद्ध वायु में किस वस्तु का अंश है और बताओ फेफड़े इस वायु में क्या उलट फेर करते हैं ?

(१२) ठंड में घरों को कैसे उष्ण किया जाय कि उनकी हवा रासायनिक दृष्टि से कैसी होती है ?

(१३) उष्णता प्रकट होने का प्रधान कारण क्या है, मनुष्य के शरीर में उष्णता का संचार कैसे होता है ?

(१४) आग क्यों कर उत्पन्न होती है, किस दशा में बुझ जाती है । कब धधक उठती है ? उत्तर सोदाहरण लिखो ।

(१५) कौन कौन सी वस्तु इंधन का काम देती है, सब से अच्छा इंधन क्या है ?

(१६) घनी बस्तियों या जन-समूह के स्थल की वायु क्यों उष्ण हो जाती है ?

(१७) घरों को उष्ण करने का क्या प्रबन्ध किया जाय ।

(१८) बन्द कोठरियों में आग जलाना स्वास्थ्य को हानिकारक क्यों है ?

(१९) उष्ण और शीतल वायु की तुलना करो ?

(२०) ओस क्या वस्तु है ?

(२१) दूषित वायु का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

२—प्रकाश।

प्रकाश, उन तरंगों का नाम है जो सूक्ष्माकाश में जिसे अँग्रेज़ी में "ईथर" कहते हैं,

प्रकाश

होता है। अन्तरिक्ष पिंड एक सूक्ष्म, पारदर्शक, पदार्थ है जो ज्योति और उष्णता के संचार का हेतु है। प्राचीन काल में भावना थी, कि प्रकाश भी एक द्रव्य है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक गमनागमन किया करता है। "न्यूटन" नामक एक पाश्चात्य वैज्ञानिक का विचार था, कि प्रकाश किसी पदार्थ के लघिष्ठ कण हैं जो अग्नि, ज्वालाएँ, या नक्षत्रों इत्यादि से उनमते हैं और चारों ओर फैलते हैं। जब यह आँखों के सामने इस प्रकार देखने में आते हैं तो आँख की महीन नसों पर अपना प्रभाव करते हैं, और लगता है। परन्तु आधुनिक खोजों ने इस सिद्धान्त को झूठा सिद्ध कर दिया है।

वैज्ञानिकों का कथन है कि देखने का काम मस्तिष्क करता है। आँख केवल एक अंग है जिसका प्रधान कार्य यह है कि जिस समय कोई वस्तु उसके सम्मुख आवे उसका प्रतिबिम्ब लेकर के मस्तिष्क के सामने उपस्थित कर दे। दिमाग उसको चेतना शक्ति से बतलाता है, और करता है।

आँख की रचना

तुम जानते हो कि आँख की बनावट एक फ़ोटो के कैमरा की भाँति है। जिस पर वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है और उनके चित्र खिचते रहते हैं। जिस प्रकार फ़ोटोग्राफ़ी के कैमरे में ऊपर एक छोटा सा गोल शीशा लगा होता है जिसे "लेन्स" कहते हैं जिस पर वस्तुओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है इसी भाँति हमारे नेत्रों के परदे हैं आँख के ऊपरी खण्ड में यह लेंस है जिस पर वस्तुओं की छाया पड़ती है। उसके पीछे एक छिद्र है और छिद्र के पीछे एक काला पर्दा है जिस पर वस्तुओं का प्रति-बिम्ब लेंस के द्वारा छिद्र में से चलता हुआ काले परदे पर पड़ता है। इसे "आँख का तिल" कहते हैं। यहाँ से वह महीन नसें जो मस्तिष्क तक जाती हैं वस्तुओं का चित्र मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं।

"काला" नाम है रङ्ग के अभाव का। यद्यपि साधारण लोग "श्वेत" से वर्ण मात्र का अभाव बोध करते हैं, परन्तु श्वेत, रक्त सात रंगों से मिलकर बनता है। यही कारण है कि प्रकाश की किरणों को काला रंग अपने में लय कर लेता है। जब श्वेत रंग पर प्रकाश पड़ता है, तो वह उसके भीतर नहीं जाता, किंतु बाहर ही से लौट आता है। इसी नियम पर, जाड़ों में काले रंग के वस्त्र पहरे जाते हैं और ग्रीष्म काल में श्वेत क्योंकि रोशनी काले रंग के कपड़ों को फोड़ कर देह तक पहुँच जाती है।

प्रकाश और उष्णता दोनों एक ही वस्तु है। दोनों सूक्ष्मा-काश की लहरों से उत्पन्न होती हैं।

आँख की पुतली और उसकी रचना

आँख की पुतली एक चिपटा पर्दा है जिसके बीच में प्रकाश जाने के लिए छोटा सा छिद्र है। इसे आँख का तिल कहते हैं। आँख के तिल में जो श्यामता दिखाई देती है, वह आँख के भीतर पटल का रंग है, जो पुतली के सूराख के पीछे है। उसके काले होने का आशय यह है कि, जो प्रकाश छिद्र के भीतर जाए उसे काला परदा खींच कर के मस्तिष्क तक पहुँचा दे। तिल के छेद के किनारों से महीन महीन नसें निकलती हैं जो पुतली में जड़ी हुई हैं। इन्हीं के द्वारा पुतली फैलती व सिकुड़ती है, और तिल घटता बढ़ता जान पड़ता है। पुतली के फैलने व सिकुड़ने का प्रबन्ध प्रकृति ने इस लिए किया है कि, बाहर की ज्योति आवश्यकता से अधिक आँख के छेद में न जा सके। तुम देखोगे कि प्रखर ज्योति में पुतली सिकुड़ जाती है और धीमी ज्योति तथा अन्धकार में फैल जाती है।

दृष्टि की शक्ति

सूर्य, बिजली की कुप्पी, या किसी अन्य तेज और तड़कदार चमकती हुई वस्तु को टकटकी बाँध कर न देखना चाहिए। इसी प्रकार लिखने पढ़ने का काम और सूक्ष्म महीन काम अन्धेरे में थोड़े

में न करना चाहिए । दोनों दशाओं में आँख को कष्ट होता है, और दृष्टि चीण होती है। तेज धूप या प्रकाश में पढ़ना लिखना हानिकारक है। प्रकाश का दृष्टि-गोचर करना, वस्तुतः, आँख का कार्य नहीं है, किन्तु यह आँख को उन होन नसों की क्रिया है। जो आँख में ढेले के सिरे से मस्तिष्क तक जाती है। और प्रकाश को मस्तिष्क तक पहुँचाती है। क्योंकि यथार्थ में देखने वाला मस्तिष्क है न कि आँख। जब प्रकाश दृष्टि वाली नस के सामने होता है, तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, इसका कारण यही है कि यह नसें जो प्रकाश को मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं। ऐसी दशा में बेकार हो जाती हैं।

अनुभव के लिए नीचे की बिन्दी और फूल को देखोः—

❀ ●

बाईं आँख बन्द कर, सीधी आँख से फूल पर दृष्टि करो और क़ागज़ को आँख से १० या १२ इंच पर रक्खो तो पहिले बिन्दी और फूल दोनों साफ़ दिखाई देंगे, परन्तु यदि पुस्तक को धीरे धीरे आँखों की ओर लाओ और दृष्टि पूर्ववत फूल पर जमी रहे, तो एक खास मौके पर बिन्दी लुप्त हो जाएगी, और केवल फूल ही दिखाई पड़ेगा। परन्तु पुस्तक को निकट लाते ही बिन्दी फिर दीखने लगेगी। इससे नतीजा निकला कि, जब तक यह बिन्दी फूल और आँख के तिल के बीच में रही, तब तक दिखाई पड़ती रही, किन्तु जब तिल और दृष्टि वाली नस के ठीक सामने

पहुँच गई तो दृष्टि से ओझल हो गई ,परन्तु आँख से और निकट होने पर यह बिन्दी तिल की दाहिनी ओर आ गई, और दृष्टि का छिद्र बिन्दो व फूल के मध्य में आ गया और बिन्दो फिर दीख पड़ने लगी।

परीक्षणों से ज्ञात होगा कि, प्रकाश या ज्योति का असर आँख पर उतनी ही देर तक नहीं रहता जब तक ज्योति आँख के सामने रहे किन्तु कुछ क्षण और रहता है । यदि बनेठी के दोनों सिरों को जला कर घुमाया जाय, तो आग का एक चक्र बन जाएगा। यह चक्र ज्योति के ऐसे चिरस्थायी गुण का परिणाम है जो आँख में प्रकाश अवलोकन के पश्चात् रमा जाता है।

प्रकाश के प्रकार

प्रकाश दो प्रकार का है एक प्राकृतिक दूसरा कृत्रिम प्राकृतिक प्रकाश दिन में धूप और रात में चाँदनी है । कृत्रिम ज्योतियों में दीपक, लम्प, बत्ती, गैस, और विद्युद्दीप बिजली की ज्योति प्रसिद्ध है। प्राकृतिक प्रकाश को कृत्रिम ज्योति नहीं कर सकती यद्यपि गैस के हँडे और बिजली की कुप्पियाँ मनुष्य के आविष्कार हैं। सूर्य की किरणों के रासायनिक गुण ~ आविष्कार में पैदा नहीं हो सकते।

हम बता चुके हैं कि ज्योति की न्यूनता तथा अधिकता से आँख की पुतली घटती बढ़ती है, और आँख के पट्ठे खिंचते या ढीले होते हैं। इसी नियम पर ध्यान रखते हुए मकान इस प्रकार बनाना चाहिए कि, कमरे के कोने कोने में प्रकाश भली भाँति आ सके। खिड़कियों में कपड़े के पर्दे लगाना, प्रकाश की तीव्रता को कम कर देता है। आबी या हरे रंग के शीशे भी प्रकाश की चमक को रोकते हैं। कड़ी धूप में हरे, पीले, या सुरमई रंग के शीशों की ऐनक लगाना हितकर है। कमरे की दीवारों पर सफ़ेदी की जगह हरा रंग पोतना तो दृष्टि के लिये उत्तम है। हरे रंग से आँखों को ठंढक पहुँचती है, और हरे रंग की दीवारों पर प्रकाश पड़ने से चमक नहीं पैदा होती।

प्रकाश के सम्बन्ध में सावधानी

लिखते पढ़ते समय ऐसे स्थान पर न बैठना चाहिए, जहाँ प्रकाश सन्मुख या पीछे से आता हो। क्योंकि सामने की ज्योति से आँखों पर चमक पड़ेगी और पीछे से ज्योति आने में अपनी परछाँही पड़ने से ज्योति रुकेगी। पढ़ते समय ऐसे स्थान पर बैठना चाहिए जहाँ प्रकाश दाहिने या बाँए से आए और लिखते समय ऐसे स्थान पर बैठा जाए जहाँ ज्योति बाईं ओर से आवे। दाहिनी ओर की ज्योति में कलम और हाथ की छाया पड़ती है और लिखने में कष्ट होता है।

पढ़ने लिखने में प्रकाश का प्रबन्ध

कृत्रिम ज्योतियों में कड़वे तेल के दीपक, अनेक वत्तियों वाले

कृत्रिम ज्योतियाँ

दीपक, मोम की वत्तियाँ प्रयोग में आते हैं। चिराग की रोशनी अँग्रेजी के बारीक अक्षरों के लिखने पढ़ने में अहितकर है। ज्योति के लिए डेस्पटें अथवा फ्लिलेघोज दीपकों से अच्छे होते हैं।

जितनी अधिक वत्तियाँ होंगी उतना ही वायु का ओपजन खर्च होगा, उतना ही अधिक धुआँ होगा और परिणाम में उतना ही अधिक आँगारिकाम्ल पैदा होगा, जिससे वायु की गन्दगी बढ़ जायगी। अतः इन दोनों से उत्तम मोमवत्ती है, जिसकी ज्योति दीपकों से तेज और धुआँ कम होता है। मोमबत्ती के पश्चात् मिट्टी के तेल के लम्प हैं उनकी ज्योति मोमवत्ती से अधिक होती है, परन्तु उनमें देख भाल की जरूरत है। वत्ती ठीक ढंग से कटी हो चिमनी साफ हो और कल्ले पर ठीक जमी हो, तेल सफ़ेद हो कल्ला भली भाँति झाड़ा पोंछा और स्वच्छ हो, इत्यादि। यदि इन में से किसी बात का व्यतिक्रम हुआ तो प्रकाश मन्द होगा और लम्प से धुआँ निकलने लगेगा। मिट्टी के तेल के लम्पों से पढ़ने लिखने का काम उन पर ग्लोब" लगा कर करना चाहिए। ग्लोब में से रोशनी केवल नीचे की ओर आनी चाहिए।

यदि लालटेन से लिखना पढ़ना हो तो उस पर मोटे का ग्लोब लगा लेना चाहिए। ग्लोब से यह रोशनी नीचे को ओर

फैलती है । और आँखें चमक से बच जाती हैं। सोते समय लम्प या दीपक को ठंडा कर देना चाहिए। कमरे की खिड़कियाँ और द्वार तो किसी दशा में भी बन्द न करने चाहिएँ । मिट्टी के तेल में धुवाँ होता है और जब धुएँ को बाहर निकलने का स्थान नहीं मिलता तो इसका काजल उड़ उड़ कर नीचे गिरता है और कमरे की सब वस्तुओं को काला कर देता है। नथुनों और मुँह में साँस के द्वारा कालिमा पहुँच जाती है और फेफड़ों में अपना विषैला प्रभाव फैलाता है।

कुछ लोग मिट्टी के तेल की ढेबरी जला कर लिखने पढ़ने या सीने पिरोने का काम करते हैं, ऐसे लोगों को इससे अधिक और क्या कहा जाए कि, वे जान बूझ कर अन्धा बनना चाहते हैं।

बिजली की ज्योति

बिजली और गैस की ज्योति कृत्रिम ज्योतियों में सबसे अच्छी है। यह स्वच्छ, विमल, और तेज होती है इसलिए आँख पर बल नहीं पड़ता, इसमें बिजली के तार से ज्योति प्रकट होती है, अतः आंगारिकाम्ल नहीं उत्पन्न होता। और वायु दोषों से बची रहती है। हाँडियाँ या हरे ग्लोबों में बिजली या गैस की तीव्रता कम हो जाती है।

गैस की ज्योति

गैस के लैम्प यद्यपि तीव्र प्रकाश देते हैं, परन्तु इनमें कुछ दोष भी हैं यदि गैस की नलकी में किसी स्थान पर छेद हो गया हो, तो गैस निकल

छत कमरे में फैल जाता है, और कमरे में दुर्गन्धि भर जाती है। गैस भड़कने वाली चीज़ है, इसलिए आग लग जाने का भय रहता है। यदि गैस को काफ़ी ओषजन न मिले तो उसमें धुआँ पैदा होता है और उसकी कालिख वस्तुओं को ख़राब कर डालती है। गैस के जलने से अंगारिकाम्ल उत्पन्न होता है और वायु को ख़राब कर देता है।

गैस की हंडी
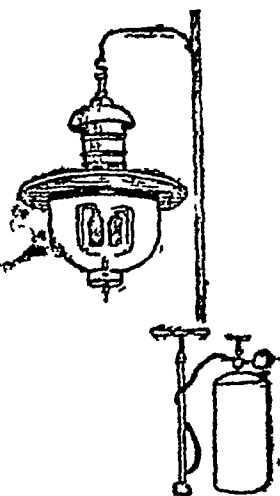
तीव्र ज्योति वाले लम्पों या हाँडियों को कमरे के बीच छत में लगाना चाहिए। ऐसी दशा में प्रकाश सब जगह रूप से पड़ता है।

अभ्यास

(१) प्रकाश किसे कहते हैं ?

(२) प्रकाश के विषय में प्राचीन विद्वानों का क्या विचार था ?

इस विषय में वर्तमान आविष्कारों ने क्या नई बात बताई ?

(३) प्रकाश हमें क्या देता है और किस प्रकार ?

(४) मस्तिष्क प्रकाश को क्योंकर ज्ञात करता है ?

(५) आँख की आकृति प्रकृति ने किस प्रकार रची ?

(६) आँख का चित्र क्या है, उसमें क्यों होती है ?

(७) प्रकाश का प्रभाव आँख की पुतली पर क्या पड़ता है ?

(८) एक ही वस्तु किस दशा में दिखाई देती है, और कब नहीं दिखाई देती कारण बताओ।

(९) प्रकाश का प्रभाव आँख पर कब तक रहता है ?

(१०) प्रकाश के विचार से घर में क्या बातें होनी चाहिएँ ?

(११) लिखते पढ़ते हुए प्रकाश के सम्बन्ध में किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

(१२) कृत्रिम ज्योतियों में कितने प्रकार की ज्योतियाँ हैं और उनसे क्या हानि और लाभ हैं ?

(१३) मिट्टी के तेल की ज्योति में किस बात की सावधानी रखनी चाहिये ?

(१४) सूर्य के प्रकाश में क्या क्या गुण हैं ?

(१५) गैस और बिजली की तुलना करो और बताओ कि इन दोनों में से स्वास्थ्य के लिए कौन लाभदायक है और क्यों ?

३—पानी

पानी अपने असली रूप में एक तरल वस्तु है। यह ओषजन या आक्सीजन और अम्बुजन या हैडरोजन से मिल कर बनी है। जीवन के लिए पानी अतीव आवश्यक और उपयोगी वस्तु है। जीवन की उत्पत्ति पानी से हुई है। इसकी स्थिति भी पानी पर ही है। यदि भूमि पर पानी की तरी न रहे, तो

पानी की विशेषताएँ

न तो इसमें कोई बीज उगे, और न कोई पेड़ हरा भरा रह सके। यदि मनुष्य और पशु को पानी न मिले, तो उस का जीना बन्द हो जाए।

संसार के जिस खंड में पशुवर्ग व वनस्पतिवर्ग हैं, वहाँ जल का होना आवश्यक है। पानी के तीन स्वरूप हो सकते हैं। यह शीत की प्रबलता से जमकर हिम हो जाता है, मध्यम दशा में तरल और द्रव रहता है और उष्ण होने पर भाप बन कर वायु में विलीन हो जाता है। परन्तु तीन अवस्थाओं में ओषजन और अम्बुजन आदि का सम्मिश्रण रहता है। जीवन के लिए पानी का तरल होना आवश्यक है और यही इसका असली रूप है।

पानी का रूप

तुमने भूगोल की पुस्तकों में पढ़ा होगा कि हिम-प्रदेशों में न तो हरियाली होती है न वृक्ष होते हैं, न वहाँ जीवन के चिन्ह हैं। यही दशा उस समय थी, जब पृथ्वी आग का एक गोला थी और उस पर समुद्र, नदी, झीलें, जलाशय आदि न थे। परन्तु यदि सच पूछो तो पानी उस समय भी न था, यद्यपि भूमि पर बहता न था। यह सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा। परन्तु ध्यानपूर्वक देखने से समझ जाओगे कि उस समय यह पानी वाष्प या गैस के रूप में पृथ्वी के चारों ओर लिपटा था। ज्यों-ज्यों युग बीतने गए, पृथ्वी ने मध्यम दशा ग्रहण की, ताप घटा और पानी ने पृथ्वी की छाती पर डेरा डाला।

जब पानी ने पृथ्वी पर अपने निज तरल रूप में पदार्पण किया, तो जीवन की उत्पत्ति हुई, प्राणीवर्ग व वनस्पतिवर्ग पैदा होने लगे। निदान पता चला कि जीवन का रहस्य पानी में है।

कूप व नदी नाले

पानी दो प्रकार से आता है, या तो हिम के पिघलने से जो पहाड़ों पर जमी रहती है, और पिघल पिघल कर नदी नालों के रूप में बहती है, और या वर्षा से। वृष्टि जल कुछ तो भूमि के ऊपर से बहता है और वह नदी की सृष्टि करता है, और कुछ भूमि में सोख जाता है, उससे स्रोत और नाले प्रकट होते हैं। कूप खोदने पर जो भूमि से जल के स्रोत निकलते हैं, वह बरसाती पानी है, जो सोखे जाकर भूमि के गर्भ तक पहुँच गया है।

पृथ्वी में सूक्ष्म छिद्र हैं, जिनमें से पानी उसके भीतर चला जाता है। वहाँ से ऐसे भूमि-स्तर पर पहुँचता है, जिसकी मिट्टी इसे और आगे नहीं बढ़ने देती। वहाँ पहुँच कर वह बटुरता है, और नाला या स्रोत बन जाता है।

इससे प्रकट है कि कुआँ जितना अधिक गहरा होगा, उतना ही उसका पानी साफ़ होगा। दूर तक भूमि के भीतर जाने से पानी के बहुतेरे कीटाणु मार्ग में रह जाते हैं। परन्तु जिन कुओं का पानी ऊपर होता है, उनका पानी पीने योग्य नहीं होता; क्योंकि भूमि के ऊपर की गन्दगी इसमें मिल जाती

हैं। इसी कारण, कुएँ के पास मोरी, प्रणाली, च इत्यादि न बनाना चाहिये। स्मरण रक्खो कि, बहुत से कीड़े और कृमि जल में जीवित ही नहीं रहते किन्तु, अण्डे बच्चे भी देते हैं।

कई देशों में, जहाँ जल का अभाव है घर की छतों पर पानी संचय करने का रिवाज है, और उसी को व्यवहार में लाते हैं।

पानी में ओषजन और अम्बुजन के सिवा कुछ और क्षार के अंश भी होते हैं, और उनकी अधिकता पर न्यूनता पर पानी को हलका या भारी कहा जाता है।

पानी के मिश्रण अंश और उनकी क्रिया

पानी उबाल देने से उसकी जाँच हो जाती है। उबालने से यह नमक पतीली की तह में बैठ जाता है। खारे पानी में खनिज नमकों का अंश अधिक होता है, मीठे पानी में कम। जिस नाले के जल में चूने आदि के अंश घुले होते हैं उसका पानी पीने से पथरी, घेघा, पीलपाँव इत्यादि रोग हो जाते हैं। खारे पानी के साबुन में सिर धोने पर झाग न उठेगी और बाल चिमट जाते हैं। इसके विरुद्ध यदि मीठे पानी से सिर धोया जाय तो केश कोमल और साफ़ हो जाते हैं और झाग खूब उठती है।

हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए पानी का सामान्य रूपेण तीन प्रकार से प्रयोग करते हैं। पीने व भोजन बनाने के लिए, स्नान के लिए और वस्त्र या बर्तन आदि धोने के लिए। पानी के प्रयोग में सब से बड़ी बात जो ध्यान रखने योग्य है, वह है उसकी स्वच्छता। गन्दा पानी सब दशा में गन्दगी फैलाता है।

पानी का प्रयोग

खाने पीने में पानी का विशेष ध्यान रखना चाहिये। पानी खुले बर्तनों में न रक्खा जाए। धूल कतवार पड़ने से पानी में गंदलाहट के सिवा कीटाणु भी पहुँच जाते हैं और उसे स्वास्थ्य नाशक बना देते हैं। दस्त आने लगते हैं, संग्रहणी, ज्वर, हैजा इत्यदि के भयंकर रोग हो जाते हैं। पेट में केंचुए पड़ जाते हैं। इसलिए पानी की गगरियाँ और सुराहियाँ ढक्नों से बन्द रखनी चाहिये। इन बर्तनों का पानी फेंक कर उन्हें प्रतिदिन नया भरना चाहिये। घड़ों को तिपाइयों या घड़ोंचों पर रखना चाहिये।

पानी का प्रयोग

अनेक रोग यथा—विशूचिका, जाड़ा ज्वर इत्यादि पानी के द्वारा फैलते हैं। मास में हर १५वें दिवस पानी पीने वाले कुओं में पुटासियम परमेंगनेट डाल देनी चाहिये। इस दवा से पानी के कीड़े मर जाते हैं और रोग नहीं फैलते। वर्षा-काल और बीमारी के समय में तो लाल दवा का खूब उपयोग होना चाहिये।

कुओं की स्वच्छता

प्रायः लोग पानी को खोलाते हैं, और जब वह ठंडा हो जाता है तो उसे घड़ा और झज्झरों में भर लेते हैं। उबाला पानी पीने से बड़े लाभ हैं तराई के स्थान और वर्षा-काल की ऋतु में यह विधि और भी उत्तम है। आँच देने से पानी के अनेक रासायनिक द्रव्य भले ही कम हो जाते हों, परन्तु उससे हानि नहीं होती। पानी के संक्रामक कीटाणु मर जाते हैं।

उबाला पानी

भिश्ती लोग पानी ले जाने के लिए मशक या पखाल का प्रयोग करते हैं। यह चीजें चमड़े की होती हैं। यह न खुल सकती हैं, और न उलटी जा सकती हैं। परिणाम यह होता है कि सदा पानी रहने से उनके चमड़े में रोगों के कीड़े पैदा हो जाते हैं, जो पानी के साथ हमारे भोजन के पदार्थों में पहुँचते हैं। इसलिये चाहिये कि चमड़े की छागलें, डोल और मशकों की हर दिन सफ़ाई होती रहे। इनके स्वच्छ करने की सरल रीति यह है कि मशक या पखाल में पानी भर कर इसमें लाल दवा डाल दो और उसका मुँह बाँधकर रात भर इसी प्रकार रक्खी रहो। सवेरा होते ही पानी खाली करके उनको धो डालो। इस विधि से भीतर के कीटाणु मर जाएँगे और मशक साफ़ हो जाएगी।

मशक व पखालों की सफ़ाई

गाँवों में देखा जाता है कि लोग मिट्टी और कीचड़ भरे डोल व घड़ों को कुओं में डाल उनसे पानी भर लेते हैं। इस प्रकार सारे कुएँ का जल

कुओं का प्रबन्ध

दूषित हो जाता है। ऐसा पानी न तो पीने के योग्य रहता है न नहाने के योग्य। ऐसे कुओं पर एक डोल गरारी में बाँध कर लटका देना चाहिए।

नहाने का पानी

प्रायः लोग कुएँ की जगह पर नहाया करते हैं, यह बुरी रीति है। ऐसा करने से छीटें कुएँ में जाती हैं। दूसरे शरीर का मैल तथा कीटाणु जो पानी से धुलते हैं, कुएँ के पानी में मिल जाते हैं। इसके सिवाय खुले मैदान में स्नान करना स्वास्थ्य-रक्षा और सभ्यता दोनों में विरुद्ध है। गयासुद्दीन बलबन के विषय में प्रसिद्ध है कि, उसे कभी किसी ने पूरा वस्त्र पहिने नहीं देखा, इसके विपरीत साधारण जनता के स्थानों में नंगे हो कर नहाना बुरा है। खुले स्थान पर नहाने से सर्दी लग जाने का डर रहता है। यदि किसी बन्द घर में खुले स्थान पर नहाया भी जाए तो जगत से पाँच छः गज की दूरी पर। कुएँ की जगह बहुत ऊँची बनानी चाहिए, जिससे आस पास का पानी तथा वृष्टि की छीटें कुएँ में न आएँ।

कपड़े धोने का पानी

बहुधा लोग कुओं की जगह पर मैले कपड़े धोया करते हैं। इससे कुओं का जल उपयोग के योग्य नहीं रहता। क्योंकि कीटाणु पानी में पहुँच कर उसके बच्चे देते और पानी को गंदा कर देते हैं।

गढ़े और

आरोग्य के विचार से घर के समीप गड्हे या तालाब भी हानिकर हैं। उनके पानी में मिट्टी सड़ने लगती है और मरी फैलती है। मच्छड़ पैदा होते हैं और सील हो जाती है। ऐसे तालाब व गढ्ढे छोटे बच्चों के लिए जोखिम होते हैं। ऐसे गड्ढों और जलाशयों में नहाना हानिकारक है। इससे पवित्रता की जगह रोग उत्पन्न होते हैं। जोंक लग कर देह में खुजली हो जाती है। फुन्सियाँ निकल आती हैं। ऐसे तालाब का पानी पीने से बुखारात आने लगता है, तिल्ली बढ़ जाती है, और सैकड़ों रोग खड़े हो जाते हैं।

घर के कुएँ

कूओं के निकट कूड़ा करकट इत्यादि न फेंकना चहिये। इस दशा में भी कीटाणु पानी में पहुँचते हैं। और ज़हर फैलाते हैं। पाखाने और रसोई घर की नालियाँ सदा स्वच्छ रखनी चाहिएँ। इनमें सफ़ाई न हुई तो मिट्टी सड़ने से दुर्गन्धि हो जाती है। मक्खियाँ व मच्छर अलग उत्पात मचाते हैं। स्मरण रखो कि मक्खियाँ व

मच्छर मनुष्य के

शत्रु हैं। इनको साँप बिच्छू से कम न चाहिए। इनके द्वारा भाँति भाँति की बीमारियाँ फैलती हैं। और शतशः विषैले तत्व हमारे पेट और रगों में पहुँचते हैं। यह दोनों अन्धकार और गन्दगी को चाहती हैं, और वहीं एकत्र होती हैं।

पीने व नहाने धोने के लिये बहती नदी का पानी, नाले का पानी पक्के कुओं का मीठा पानी, नल या बन्द नल के कुओं का जल, अच्छा होता है। नदी, नाले और मीठे कुओं का पानी सब से उत्तम होता है। बरसात में नदियों का पानी मिट्टी कूड़ा करकट बह आने से गंदेला हो जाता है। और पीने के योग्य नहीं रहता। हिम, ओले और वृष्टि का जल आहार भी पचाता है। बहुधा औषधियों में इसका प्रयोग किया जाता है।

पानी प्राप्त करने के विविध उपाय

अभ्यास

(१) पानी क्या वस्तु है, किन वस्तुओं से बनता है, और उनका क्या महत्त्व है?

(२) पानी के कितने रूप हैं और वनस्पति व प्राणिवर्ग के लिये कौनसा रूप ज़रूरी है?

(३) संसार के आरम्भ में क्या दशा थी, और इस पर जीवों और जन्तुओं का जन्म कब हुआ?

(४) खारे और मीठे पानी में रासायनिक भेद बताओ।

(५) हल्के व भारी पानी में क्या पहिचान है?

(६) पानी का विशेष उपयोग क्या है?

(७) पानी के बर्तनों और पानी के प्रयोग के विषय में क्या सावधानी चाहिये ?

(८) पानी स्वच्छ करने की क्या विधि है ?

(९) कुओं में पानी किस प्रकार आता है और कैसे स्वच्छ किया जा सकता है ?

(१०) मश्क के शुद्ध (साफ़) करने की क्या रीति है ?

(११) कुओं का पानी किन रीतियों से दूषित होता है ?

(१२) दूषित पानी का स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(१३) " (जलाशयों) में नहाने से क्या हानि होती है ?

(१४) नालियों की स्वच्छता की क्यों आवश्यकता है ?

(१५) गढ़ों और तालावों का पानी क्या २ हानि पहुँचाता है ?

(१६) मक्खियों और मच्छरों से क्या हानि पहुँचती है ?

(१७) पानी प्राप्त करने के कितने उपाय हैं, और उनमें कौन सा पानी अच्छा होता है ?

४—श्वास

(श्वास के आने जाने के मार्ग)
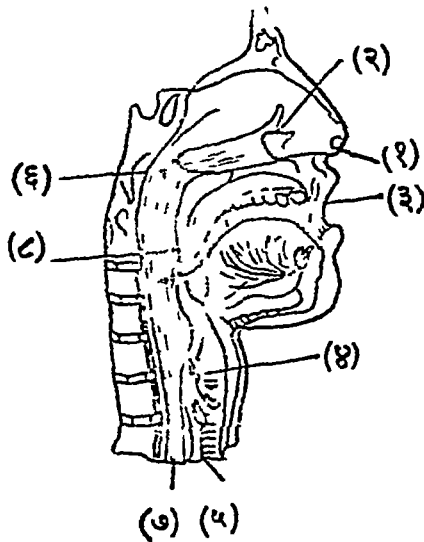
(१) नाक से साँस जाने का छिद्र। (२) नथुने का सूराख। (३) मुख। (४) मुख के भीतर वायु जाने का छिद्र (५) टेंटुवा (नरखरा) या साँस जाने की नली जो फेफड़ों में संयुक्त है। (६) नाक की नस का हवा का छिद्र जिसका सम्बन्ध कान से है। (७) वह नाली जिसके द्वारा आहार आमाशय में जाता है। (८) एक आच्छादन जो वायु और आहार की नालियों के बीच में लगा है।

(फेफड़े की रचना)
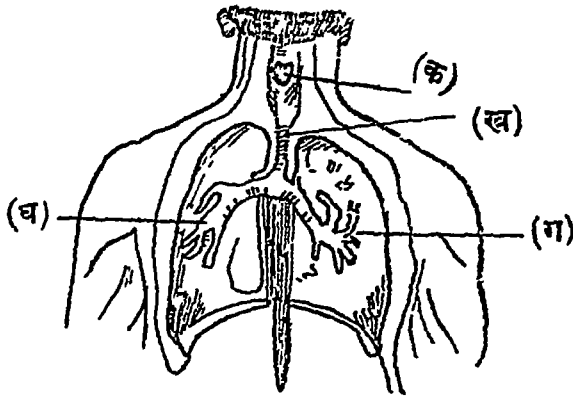
(क) टेंटुवे का छेद। (ख) टेंटुवा (नरख़रा)। (ग घ) फेफड़े।

मनुष्य के जीवन का अवलम्ब श्वास है। साँस, वस्तुतः शुद्ध ओषजन वायु का फेफड़ों में पहुँचना और विषैली आँगारिकाम्ल वायु का बाहर निकलना है। प्रकृति ने इस काम के लिए, श्वास लेने वाले जीवों के देह में फेफड़े बनाये हैं। फेफड़ों के साथ हृदय लगा हुआ है। यह जीवधारियों का मुख्य अंग है। यह अंग बहुत सुकुमार है। अतः प्रकृति ने इसे सुदृढ़ अस्थि-पिंजर के भीतर रक्खा है। हड्डियों का यह खण्ड "पसुली" कहलाता है। यह हमारे हृदय और फेफड़ों की रक्षा करता है।

श्वास

जब साँस पेट में प्रवेश करता है, तो फेफड़े खुल जाते हैं।

साँस लेने में फेफड़ों की क्रिया

पसुलियाँ फैल जाती हैं और आने वाली शुद्ध वायु को भली भाँति प्रवेश करने का अवसर देती हैं। फेफड़े अपना काम करने लगते हैं; शुद्ध वायु ओषजन तत्त्व को आवश्यकतानुसार ग्रहण करते हैं और जिस अंग को जो वस्तु आवश्यक होती है, उसे अपनी महीन नसों के द्वारा रुधिर में मिला कर पहुँचा देते हैं। इसके उपरान्त दूसरी प्रक्रिया आरम्भ होती है अर्थात् फेफड़े उस आँगारिकाम्ल की इस विपैली वायु को निकालने के लिए बन्द हो जाते हैं। पसुलियाँ सिकुड़ जाती हैं, और साँस जिस मार्ग से आता था फिर उसी मार्ग से लौट जाता है। प्राणीमात्र के शारीरिक यन्त्र की यह क्रिया जन्मते ही आरम्भ हो जाती है और मरते दम समाप्त होती है। बच्चा जन्म से पहिला काम यही करता है। यदि फेफड़े एक बार बन्द होकर पुनः न खुलें तो जीवन का अन्त है और इसी का नाम मृत्यु है।

श्वास का वेग

तुमने देखा होगा, कि दौड़ने, व्यायाम करने, अथवा अन्य शारीरिक श्रम करने में श्वास की गति तेज हो जाती है। ऐसा क्यों होता है? कारण यह कि परिश्रम करने या दौड़ने से रगों या पट्ठों को अधिक काम करना पड़ता है। उन्हें सचालित रखने के लिए रक्त की अधिक आवश्यकता होती है और रक्त को

वेग से दौड़ना पड़ता है। अधिक रक्त पहुँचाने के लिए शरीर के वह अंग, जिन्हें प्रकृति ने इसी के लिए नियत रक्खा है, अपना काम वेग से करने लगते हैं। रक्त द्रुत-गति से शरीर के सम्पूर्ण खंड मे दौड़ने लगता है। फल यह होता है कि, देह की उष्णता बढ़ जाती है, और आँगारिकाम्ल अधिक मात्रा में बनने लगता है। फेफड़े उन्हें निकालने के लिए शीघ्र शीघ्र परिश्रम करने लगते हैं। इसके सिवा शरीर के अवयवों को वेग से काम करने लिए अधिकाधिक ओषजन वायु की आवश्यकता होती है। इसलिए फेफड़ों के काम में शीघ्र जाती है। वह शीघ्र शीघ्र ओषजन लेने लगते हैं और आँगारिकाम्ल को निकालने लगते हैं। श्वास के वेग का यही कारण है। यही बात तुम बच्चों में देखोगे, बच्चा जब सोता है तो उसकी साँस धीमी चलती है, क्योंकि इस समय न आँगारिकाम्ल अधिक पैदा होती है न ओषजन वायु की आवश्यकता होती है, परन्तु जब वह उठ कर खेलने लगता है, तो साँस तेज तेज चलने लगती है। जिसका कारण वही आँगारिकाम्ल की अधिकता और ओषजन की कमी है।

साँस लेने के प्राकृतिक मार्ग नथुने हैं। यद्यपि साँस मुख के द्वारा भी ली जासकती है परन्तु मुँह से साँस लेना स्वास्थ्य के लिए लाभकारी नहीं है। वायु जब नथुनों के मार्ग से नाक के भीतर पहुँचती

साँस लेने के अंग

है, तो पहिले उसकी सफ़ाई होती है, नाक के भीतर बाल व रोएँ होते हैं। जिन्हें प्रकृति ने केवल इसी निमित्त जमाया है, कि भीतर जाने वाली वायु को छानदें और जो धूल के कण या बारीक तृण आदि वायु में उड़ कर आते हैं उन्हें रोक दें। इसके पश्चात् स्वच्छ वायु आगे बढ़ती है, और नाक के छेद से होती हुई, आहार वाली नाली में पहुँचती है। यहाँ पहुँच कर जठराग्नि की उष्णता इस ठंडी वायु को तपाती है, थोड़ी देर तक वह इसी मार्ग से भीतर बढ़ती है, गले के निकट पहुँच कर, आहार वाली नाली दो भागों में विभक्त हो जाती है। एक नाली सीधी आमाशय में पहुँचती है, और दूसरी नाली फेफड़ों को जाती है। जो नाली फेफड़ों को जाती है उसे टेंटुवा कहते हैं। साँस की वायु आहार वाली को ऊपरी भाग पर करके फेफड़ों वाली नाली की ओर चली जाती है और टेंटुवा के मुख को पार करके फेफड़ों में पहुँच जाती है। फेफड़ों के पास पहुँच कर टेंटुवा की नाली दो शाखाओं में बँट जाती है। एक दाहिने फेफड़े को जाती है दूसरी बाएँ को जैसा कि ऊपर की आकृति से ज्ञात होगा।

आहार वाली टेंटुवे की नाली से जिस स्थान पर मिलती है, वह पहिले चित्र में प्रकट है। ८ अंक पर दिखाया गया है। इस स्थान पर आहार वाली नाली में छेद होता है। जो एक पर्दे से ढका रहता है। साँस लेने में यह पर्दा उठा रहता है। जिससे कि वायु टेंटुवा की नाली से सुगमता

से जा सके। लेकिन श्वास निकलते समय यह पर्दा उठ कर टेंटुवा के मुख को ढक लेता है। जिससे आहार साँस की नाली में न पहुँचे। टेंटुए के ऊपरी खंड में महीन हड्डियों के पर्दे लगे है, जिनमें वायु से स्पन्दन (धड़कन) होता है और शब्द होता है। जब वायु भीतर जाती है, यह पर्दे खुल जाते हैं परन्तु जब वायु भीतर से बाहर निकलती है तो ध्वनि उत्पन्न होती है। शब्द उत्पादक पर्दों से नीचे उतर कर घुट्टी के सिरे तक बहुत सूक्ष्म रोएँ हैं। गर्द गुबार के कण वायु के साथ चले आएँ वो इन लोगों में चिमट जाते हैं। प्रकृति ने उस नाली की आन्तरिक त्वचा ऐसी बनाई है कि वह स्वयं चढ़ा उतरा करता है। अतः जो वस्तुएँ वायु के साथ साँस की नाली में आ जाती हैं, वह बालों में चिमट कर ऊपर चढ़ने लगती हैं, यहाँ तक कि कण्ठ तक आ जाती हैं और मनुष्य खँखार कर थूक देता है।

मुख द्वारा साँस लेने के अवगुण

हम बता चुके हैं कि मुँह से साँस लेना नियम के प्रतिकूल है। बच्चे मुँह से साँस लेते हैं उनको साधारणतया नीचे लिखी व्याधियाँ हो जाती हैं:—

(१) नाक द्वारा वायु छन कर जाती है। दूसरे यह कि उष्ण हो जाती है और शरीर के भीतरी अवयवों में ठंड का प्रवेश नहीं होने पाता। मुँह से साँस लेने में इन दोनों

बातों में से एक भी नहीं होती । मुँह से साँस लेने वाले के फेफड़ों में शीत का प्रभाव हो जाता है और खाँसी आने लगती है।

(२) मुँह से साँस लेने वालों के वक्षस्थल की रचना में भेद पड़ जाता है। नाक से साँस लेने की आदत न होने से वह जब नथुनों से साँस लेते हैं तो साँस रुकती है और वक्षस्थल में पर्याप्त वायु नहीं पहुँचती। इस लिए वक्ष की बनावट में अन्तर पड़ जाता है। अल्पायु बच्चों पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। उनकी पसुलियाँ कोमल होती हैं और सुगमता से झुक कर टेढ़ी हो जाती हैं।

(३) बहुधा वक्ष की बीमारियाँ उमड़ती हैं। इसमें कफ क्षय, राजयक्ष्मा अत्यन्त प्राणघातिक रोग हैं। मुँह से साँस लेने का स्वभाव अधिकांश ऐसे लोगों को हो जाता है जिनको जुकाम अधिक हुआ करता है। जुकाम से नथुने भर जाते हैं और मुँह से साँस लेना पड़ता है जो लोग वक्ष और कटि पर बहुत कसा कपड़ा पहिनते हैं उन्हें भी क्षय हो सकता है, क्योंकि साँस लेते समय छाती और पसुलियों को फैलने में कष्ट होता है।

(४) मुँह से साँस लेने वालों के नाक में बहुधा दुष्ट मांस पैदा हो जाता है, जिससे नाक से साँस लेना कठिन हो जाता है। यह दुष्ट मांस बढ़ते बढ़ते गले की नाली तक पहुँच जाता है, और कान के भीतरी छेदों को बन्द कर देता है। मनुष्य ऊँचा सुनने लगता है गले की गिल्टियाँ बड़ी हो जाती हैं और कण्ठमाला रोग हो जाता है।

स्वास्थ्य के लिए गहरी साँस और शुद्ध वायु है।

व्यायाम के गुण

दौड़ने, परिश्रम करने, अन्य शारीरिक श्रम के खेलों में यह दोनों बातें पूर्ण प्रकार से प्राप्त होती हैं। पाठशालाओं और पलटन की क़वायद से दम बढ़ता है।

वाष्प और जल

मनुष्य की देह में स्वाभाविक उष्णता विद्यमान है। जो साँस के द्वारा पेट में जाती है, वह इस उष्णता को स्थापित रखने में सहायता देती है और हमारा आहार इस आग के जलने में ईंधन का काम देता है। जब प्राणीमात्र के शरीर में जल का होना आवश्यक है, तो स्पष्ट है कि शरीर का ताप इस जल पर अपना प्रभुत्व समुचित रीति से करेगा। तुम जानते हो कि पानी जब गरमी पाता है, तो वाष्प रूप में परिणत होकर उड़ने लगता है और वायु में विलीन हो जाता है। जठराग्नि से भी यही अवस्था होती है और पानी भाप बन कर देह के भिन्न-भिन्न मार्गों से निकला करता है।

प्रस्वेद और रोम कूप

देह से पानी का भाप बन कर निकलने का मार्ग एक तो साँस है दूसरा पसीना है। यदि अणुवीक्षण-यन्त्र (ख़ुर्दबीन) से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि हमारे शरीर में छोटे-छोटे छिद्र हैं। कहीं अधिक, कहीं कम। एक वर्ग इंच में ३०० से लेकर ३००० तक छिद्र हैं। इन छिद्रों को रोम-कूप कहते हैं। यह रोम-कूप यथार्थ में वह नालियाँ हैं,

जिनके द्वारा देह का पानी वाहर निकलता रहता है। इसे हम पसीना कहते हैं। हमारे शरीर की त्वचा पर्तों से बनी है। एक ऊपरी पर्त और दूसरे उसके नीचे की पर्त। इसमें खून की महीन नसें आकर मिलती हैं। तुमने देखा होगा कि देह में खोरच लग जाने से खाल किंचित् छिल जाती है। परन्तु, फिर भी रक्त नहीं निकलता, और न अधिक पीड़ा ही होती है। किन्तु यदि यह घोन्हा कुछ गहरा लगा, तो रक्त निकल आता है। कारण यह है कि पहिली दशा में केवल खाल की ऊपर को झिल्ली कटी है, दूसरी दशा के दोनों पर्तें विदीर्ण हो गई हैं। हाथ व पाँव की उँगलियों, ऐंड़ी व हथेली के किनारे के खण्ड की ऊपरी खाल, शरीर के और खण्डों की खाल से मोटी होती हैं। रोम-कूपों की नालियाँ खाल के इन दोनों पर्तों में से चलती हुई खाल के भीतर प्रविष्ट

पसीना निकलने की नालियाँ

प्रकृति ने इस गुच्छे को आर्द्रता सोखने की विशेष शक्ति दी है, अतः रक्त में जो होती है वह चूसी जाकर इन नालियों के द्वारा बाहर निकलती है, उसी का नाम पसीना है।

होजाती हैं। यह नालियाँ अपने अन्तर्वर्ती छोर पर गुच्छा-सा बना लेती है।

रोम-कूप की यह नालियाँ लगभग $\frac{१}{४}$ इंच गहरी और $\frac{१}{२०}$ इंच मोटी होती हैं।

पसीने के साथ रक्त के क्षार युक्त अंश निकलते हैं और कारबन का कुछ अंश भी साँस ही की भाँति रोम-कूपों द्वारा भीतर आया करता है। रोम-कूप अपनी प्रक्रिया सर्वदा करते रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अथवा शारीरिक श्रम के पश्चात् पसीना अधिक निकलता है। परन्तु, और समयों में पसीना निकला करता है, वह दीखता नहीं, क्योंकि रोम-कूपों के मुँह पर पहुँच कर भाप बनकर उड़ जाता है। यदि परिश्रम के बाद थोड़ी देर हम उसी प्रकार बैठे रहें, तो यह पसीना भाप बनकर उड़ जाता है। इसी को हम पसीने का सूखना कहते हैं।

रोम-कूपों की प्रक्रिया

रोम-कूप से ओषजन प्रवेश करती है; और इनके द्वारा शरीर के भीतर विषमय तत्व यथा—आँगारिकाम्ल और क्षार युक्त लवण इत्यादि पसीने के साथ निकलते रहते हैं, इसलिये रोम-कूपों का खुला रहना आवश्यक है। स्नान करने से रोम-कूप खुले रहते हैं। साबुन से मलकर नहाना लाभप्रद है। क्योंकि शरीर की चिकनाहट और मैल आदि साबुन के कारण फूल

रोम-कूप का महत्व

करके छूट जाते हैं और रोम-कूप खुल जाते हैं। जब शरीर के किसी भाग में मैल जम जाती है, और रोम-कूपों का द्वार भर जाता है तब तेजाब उत्पन्न होकर वह भाग पक जाता है। रोम-कूपों का महत्व इससे ज्ञात हो जाता है कि यदि किसी व्यक्ति के शरीर भर में सिर से लेकर पैर तक गहरा कीचड़ लेपन कर दिया जाय तो वह मनुष्य मर जायगा, चाहे नथने श्वास के लिये खुले ही क्यों न हों। इससे ज्ञात हुआ कि केवल नाक ही के द्वारा साँस नहीं लेते; किन्तु हमारा सारा शरीर साँस लेता है। जो कार्य नथुनों या मुँह से चलता है, वही कार्य न्यूनाधिक समस्त शरीर में होता रहता है।

शरीर पर ऋतु का प्रभाव

पसीना उड़ते समय भाप के रूप में परिणत होता है। भाप सदा उष्ण होती है। कारण यह कि जब पानी किसी तप्त वस्तु से छू जाता है, तब उसके ताप को खींच लेता है, और इस विधि, भाप के द्वारा, इसकी उष्णता निकलती रहती है यही कारण है कि व्यायाम करने से शरीर तप्त हो जाते हैं, परन्तु पसीना निकल जाने से देह की उष्णता शान्त होजाती है और ठंढ लगने लगती है। ग्रीष्म काल में जब आस पास की वायु की उष्णता शरीर की उष्णता से अधिक हो तो शरीर इस उष्णता को ग्रहण करने लगता है, और गरमी मालूम होती है। गरमी जान पड़ने का यह अभिप्राय है कि शरीर के बाहरी भाग का ताप

शरीर गत उष्णता की तुलना में बहुत है और शरीर इस गरमी को अपनी ओर खींच रहा है।

तुम देखोगे कि शरीर की उष्णता हर ऋतु में समान रहती है। यदि स्वास्थ्य की दशा हो तो, जितनी अधिक उष्णता उत्पन्न होगी, उतनी ही अधिकता से उष्णता निकलेगी भी। इसलिये जब वायु में ताप अधिक होता है, अथवा गरमी के समय कठोर व्यायाम किया जाए, तो पसीना अत्यधिक निकलता है। पसीना की अधिकता के यह अर्थ हैं कि शरीर की उष्णता प्रचुर परिमाण में भाप बन कर उड़ रही है। इसके विपरीत जाड़ों में कितना ही घोर परिश्रम किया जाए, पसीना थोड़े परिमाण में निकलेगा। जिसका यह अर्थ हुआ कि उष्णता अल्प परिमाण में भाप द्वारा उड़ती है। अस्तु ज्ञात हुआ कि प्रकृति ने रोम-कूपों को शरीर में इस प्रयोजन से रक्खा है कि देह की उष्णता घटने बढ़ने न पाए।

पसीना पर ऋतु का प्रभाव

यदि जाड़ों में पसीना अधिक निकले और ग्रीष्म ऋतुओं में कम, तो स्पष्ट है कि; जाड़ों में देह की उष्णता अधिक मात्रा में निकलती है और ग्रीष्म ऋतुओं में कम, फल यह होगा कि अन्त-स्ताप की ९८ ६ की स्वाभाविक मात्रा फिर न बनी रहेगी और स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।

शारीरिक उष्णता के बढ़ने पर पसीने की प्रबलता का यह है कि रक्त की नाड़ियों का मुँह फैल जाता है और रक्त

अधिक मात्रा में, सूक्ष्म नसों के द्वारा मांस में दौड़ने लगता है। रोम कूप के छोर वाले गुच्छे अपनी शोषक-शक्ति को अधिक वेगसे काम में लाते हैं और पसीने का स्राव अधिक मात्रा में होने लगता है। "परन्तु ठंडा पसीना" निकलने का दूसरा रूप होता है। कारण यह कि, रक्त वाली नसें संकुचित हो जाती हैं। रक्त का संचार कम हो जाता है। जिस के कारण मुख का रंग फीका पड़ जाता है और शरीर शीतल हो जाता है। परन्तु अकस्मात, भय अथवा अन्य कारणों से पसीना शोषक गुच्छे पुनः अपना काम बड़े वेग से करने लगते हैं, और ठंडा पसीना प्रवाहित होता है।

पसीना के विषय में चहुँ ओर की वायु का भी ध्यान रखना आवश्यक है। यदि वायु तर है और इसमें पानी का अधिक अंश है, तो देह की आर्द्रता थोड़ी मात्रा में भाप बन कर उड़ेगी, और देह की उष्णता न निकलने पाएगी। लेकिन आस पास की वायु का ताप शरीर की उष्णता से अधिक हुआ, और वायु शुष्क हुई तो शरीर की उष्णता बढ़ जायगी और शरीर बाहरी ताप को ग्रहण करने लगेगा। इसी कारण ग्रीष्म काल में जब कि वायु सूखी और तप्त हो, जिसे "लू" कहते हैं, पानी खूब पीना चाहिए। जिसमें शरीर में पर्य्याप्त तरी रहे, पसीना खूब निकले, और भाप उड़ती रहे।

ठंडे या शीतोष्ण स्थानों में मोटे या गरम कपड़े धारण करने का यही कारण है कि, कपड़े शरीर की रक्षा करें और वाहर की वायु शरीर में लग कर शरीर की उष्णता न हरण करने पाये। यह विचार मिथ्या है कि कपड़े देह को गरम करते हैं। यथार्थ बात यह है कि कपड़े देह की उष्णता को वाहर की वायु में मिलने से रोकते हैं। डाक्टरों की सम्मति है कि एक मोटा वस्त्र पहनने की जगह यदि कई कपड़े नीचे ऊपर पहिने जाएँ तो अधिक लाभ है। क्योंकि इस प्रकार इन कपड़ों के बीच की वायु उष्ण रहती है, बाहर की ठंडी वायु शरीर तक नहीं पहुँचने पाती। इस प्रयोजन के लिये ऊनी कपड़े उत्तम होते हैं। इनसे न शरीर की उष्णता बाहर निकलने पाती है और न बाहर की उष्णता भीतर पहुँचने पाती है। इसी नियम पर, ग्रीष्म-काल में भी ऊनी वस्त्र लाभदायक हैं। कम से कम, बनियाइन, या नीचे पहिनने की मिरजई आदि अवश्य ऊनी होना चाहिए। क्योंकि यह पसीना को सोखते हैं और शरीर को शीतल रखते हैं।

वस्त्र का उपयोग

खुली वायु में भीगा कपड़ा पहिनने से हानि पहुँचती है और सर्दी लग कर निमोनिया हो जाता है। भीगे कपड़े पहिनने से अर्द्धांग या पक्षाघात का भय है। इसी कारण आयास करके, या किसी उष्ण स्थान जहाँ पसीना चुचुआता हो, एक बारगी ठंडी वायु में निकल आना या टहलना हानिकर है। व्यायाम के

पश्चात् गरम कपड़ा पहिनना चाहिए, और जब पसीना सूख जाए तब नहाना चाहिए। पसीने से भीगा हुआ कपड़ा उतार कर धूप में डाल देना चाहिए। बनियाइन, मोजे, और बण्डी इत्यादि को शीघ्र शीघ्र बदल डालना चाहिए और दूसरी बण्डी उपयोग में लानी चाहिए। पसीने में शरीर के जहरीले अंश निकलते हैं। इनमें एक प्रकार का तेजाब होता है। मैल के साथ जब पसीना मिलता है तब तेजाब का काम करने लगता है। दाद, खुजली, इत्यादि विविध भाँति के त्वचा रोग हो जाते हैं। मैल के जम जाने से और पसीना में सड़ने से शरीर में घाव हो जाते हैं। पसीना में ओदे वस्त्र न बदलने से यह व्याधियाँ होती हैं। रोम कूपों के छिद्र इस क्षार के प्रभाव से पक जाते हैं, और देह भर में दाने दाने पड़ जाते हैं जो कभी बढ़ कर के फुन्सियों के रूप में प्रकट होते हैं।

मलीन वस्त्र

मैले कपड़ों में भीतर व जुँई पड़ जाती हैं। देह में खुजलाहट होने लगती है, और महीन महीन दाने निकलने लगते हैं जिससे कभी कभी बड़ा दुःख होता है। चौथे दिन अथवा अधिक से अधिक आठवें दिन कपड़े बदल डालने चाहिएँ। जहाँ तक हो सके, एक ही वस्त्र रात दिन निरन्तर न पहिनना चाहिए। रात के कपड़े अलग रहें और दिन के कपड़े अलग, इससे एक तो कपड़े मैले कम होते हैं, दूसरे, पसीने में कम गलते हैं। जो कपड़े नीचे पहिने जाएँ उनकी

स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए । उनको शीघ्र शीघ्र बदलो और प्रति दिन धो डालो। पसीना सूख जाने से कपड़े में दुर्गन्धि आने लगती है। जेब में सदा रूमाल रखना चाहिए और नाक मुँह रूमाल से साफ़ करने चाहिएँ। मैले लड़के कुरते की बाहों में नाक पोंछा करते हैं, यह बड़ी गन्दी बान है। इससे कपड़े भी गन्दे होते हैं और दूसरों को घृणा भी लगती है।

लोगों का विचार है कि, बारम्बार धुलाने से कपड़े फट जाते हैं, परन्तु यह ठीक नही। तुम जानते हो कि पसीने में खार होतो है. मैल पसीना में तेजाब पैदा करता है, जिससे कपड़ा गल जाता है। यही कारण है कि मैले कपडे की आयु बहुत कम होती है अनुभव के लिये, एक बूद तेजाब किसी कपड़े पर डालदो, कपड़ा गल जाएगा। परीक्षाओं से सिद्ध है, कि यदि ऊनी मोजे प्रति दिन धुलतें रहें, तो उनकी आयु दुगनी हो जाती है। मोजों को दूसरे, तीसरे दिन अवश्य धुलवाना चाहिए, अन्यथा पैरों में पसीना से दुर्गन्धि आने लगती है।

बिछौने के विषय में

पहिनने के वस्त्रों की भाँति अन्य वस्त्रों की भी सावधानी रखनी चाहिए। पलंग की चादर, तोशक, तकिये और रात्रि के पहिनने के कपड़े सब को दूसरे तीसरे दिन धूप में डाल देना चाहिए, जिससे उनके कीटाणु धूप में मर जाएँ। दरी, तोशक पर चादर लगाना उचित

है, क्योंकि चादर से दरी और तोशक मैली नहीं होने पाती और चादर निरन्तर धुलती रहती है। पहिनने के कपड़ों की भाँति चादर, तकिया व गिलाफ़ भी बदलने चाहिएँ।

अभ्यास

(१) साँस क्या वस्तु है, और किस प्रकार हमारे शरीर में आती जाती है?

(२) दौड़ने और शारीरिक श्रम करने से साँस क्यों तेज़ गति से चलने लगती है?

(३) बच्चों की साँस सोते समय कैसी चलती है, और उसका क्या कारण है?

(४) साँस लेने की प्राकृतिक रीति क्या है, और उसके क्या गुण हैं?

(५) साँस को पेट तक पहुँचने में जिन मार्गों और जिन भिन्न अंगों से होकर चलना पड़ता है, उसका वृत्तान्त वर्णन करो।

(६) साँस लेने में कौन कौन से अंग क्या २ विशेष काम करते हैं?

(७) वायु और आहार वाली नालियों में क्या संबन्ध है और प्रत्येक का क्या काम है?

(८) ध्वनी कैसे पैदा होती है और जो जो गिर्द गुबार गले में नीचे उतर जाता है वह कैसे बाहिर निकलता है?

(९) मुँह से साँस लेने की बान कैसे पड़ जाती है, और इससे क्या बुराइयाँ पैदा होती हैं?

(१०) पसीना क्या वस्तु है वह कैसे और कब निकलता है ?

(११) जो साँस फेफड़ों से निर्गत होती है, उसमें पानी होता है या नहीं, अपने उत्तर को प्रमाण के साथ बताओ।

(१२) रोम-कूप क्या वस्तु हैं और उनके विषय में तुम क्या जानते हो ?

(१३) रोम-कूप क्या काम करते हैं और उनकी प्रक्रिया किस प्रकार होती है ?

(१४) स्नान से क्या लाभ होते हैं और न नहाने से क्या क्या हानियाँ होती हैं ?

(१५) पसीना का देह की उष्णता से क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट रीति से बताओ।

(१६) देह की स्वाभाविक उष्णता का क्या अंश होता है और जाड़े या ग्रीष्म की ऋतुओं में इसमें कोई अन्तर पड़ता है या नहीं ? क्या कारण है ?

(१७) आस पास की वायु का देह पर क्या प्रभाव पड़ता है और किस प्रकार ?

(१८) सर्दी और गरमी लगने से क्या अभिप्राय है और सर्दी से बचने के लिए क्या उपाय है ?

(१९) अन्तस्ताप और बहिस्ताप में क्या भेद है ?

(२०) कपड़ों के विषय मे क्या सावधानी चाहिए ? और क्यों ?

(२१) पसीना का वस्त्रों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? मैले कपड़े स्वास्थ्य के लिए क्यों हानिकारी हैं ?

(२१) ओढ़ने और बिछाने के कपड़ों के सम्बन्ध में क्या सावधानी बर्तनी चाहिए ?

५—शुद्ध वायु के लाभ

तुम जानते हो कि वायु तीन प्रधान तत्वों से बनी है—ओषजन या आक्सिजन, तद्र्यजन (अथवा नत्रजन) या नाइटरोजन, और आँगारिकाम्ल या कारबोनिक एसिड गैस। परन्तु, वायु की बुराई या अच्छाई, इन तत्त्वों या अंशों के समावेश पर निर्भर है। अतएव शुद्ध वायु में जो स्वाभाविक संयोग होता है, वही हवा के जाँचने की ठीक कसौटी है। शुद्ध वायु में ओषजन का मिश्रण २०½ प्रति शत होता है। तद्र्यजन का ७९ प्रति शत के भाव से और आँगारिकाम्ल का केवल ०४ के भाव से। शेष अँश अन्य तत्त्वों के होते हैं। यदि इन अँशों में से कोई अँश भी घट बढ़ गया, तो वायु की स्वाभाविक विशेपताओं में कमी हो जायगी।

वायु का रासायनिक मिश्रण

खुले मैदान की हवा जब हमारे शरीर में प्रवेश करती है तब यह अंश इसी भाव से होते हैं। यदि बाहर निकलने वाली साँस की जाँच की जाए, तो ज्ञात होगा, तद्र्यजन की मात्रा उतने ही परिमाण में रहती है लेकिन ओषजन अथवा आँगारि-

शुद्ध वायु और श्वाँस की हवा

काम्ल की मात्रा में अन्तर पड़ जाता है। ओषजन की मात्रा लगभग ४ प्रतिशत घट जाती है और आँगारिकाम्ल का मिश्रण ·०४ के ठौर ४·६ प्रतिशत होजाता है।

अस्तु, ज्ञात हुआ कि हमारे प्रत्येक साँस में जो ताजी वायु पेट में जाती है इसके ओषजन का कुछ अंश भीतर रह जाता है, और जब वह हवा बाहर आती है तब ओषजन की जगह आँगारिकाम्ल का अंश इसमें अधिक होजाता है। परिणाम यह निकला कि प्रकृति की ओर से साँस लेने वाले प्राणीमात्र को बाहर की ओषजन की हर समय आवश्यकता रहती है। इनकी देह के भीतर आँगारिकाम्ल निरन्तर उत्पन्न होती रहती है जिसे वे अविछिन्न रूप से निकाला करते हैं। साँस लेने का प्रबन्ध प्रकृति ने केवल इस प्रयोजन से रक्खा है कि ओषजन देह के भीतर पहुँचती रहे, और आँगारिकाम्ल बाहर निकलती रहे।

साँस लेने का कारण

इसीलिए हमारी नसों में दो रंग का रक्त दौड़ता है—एक लाल और दूसरा श्याम। लाल रुधिर वह है जिसे ताजी हवा शुद्ध कर चुकी है। उस में वायु की ओषजन भरी हुई है। श्याम रक्त वह है, जो शरीर में चक्कर लगाने के पश्चात् दूषित हो चली है। इसमें ओषजन की जगह आँगारिकाम्ल के विषैले द्रव्य भरे हुए हैं। इसी का नाम "रक्त-सञ्चार" है, जो रात-दिन, सोते-जागते सर्वदा देह में प्रचलित रहता है।

खोज से ज्ञान पड़ेगा कि ओषजन और आँगारिकाम्ल को आवश्यकता केवल जीवधारियों ही को नहीं, किन्तु वनस्पति वर्ग को भी है।

शुद्ध वायु की जीवों और वनस्पति को आवश्यकता

जिस प्रकार जीव-जन्तु ओपजन को ग्रहण करते हैं और आँगारिकाम्ल को पैदा करते और निकालते हैं, इसी प्रकार वनस्पति भी भेद इतना है कि पशु-प्राणी तो दिन-दिन पर श्वास के द्वारा यह प्रक्रिया करते हैं, और वृक्षवर्ग दिन के समय आँगारिकाम्ल का शोषण करते हैं और ओपजन को निकाला करते हैं, और रात को उसका उलटा अर्थात् ओपजन को शोषण करते हैं और आँगारिकाम्ल निकाल देते हैं। इसकी क्रियात्मक परीक्षा यह है कि गरमी में दिन के समय खुले मैदानों में सर्दी होती है, और वृक्षों में गरमी। तुम प्रथम पाठ में पढ़ चुके हो, कि वायु में जब आँगारिकाम्ल का अंश अधिक होता है, तब वह उष्ण हो जाती है। पेड़ों के नीचे और आस-पास की वायु के उष्ण होने का यही कारण है कि रात के समय पेड़ आँगारिकाम्ल देते हैं।

अग्नि और पवन

तुम जानते हो कि, आग में ईंधन इस हेतु डाला जाता है, कि आग जलती रहे और आग में ताप बना रहे। आग जब जलेगी तब ताप और उष्णता उत्पन्न होगी। जब ईंधन झोंका जायगा तब आँगारिकाम्ल की उत्पत्ति होगी। परन्तु स्मरण रहे कि, आग के

जलने के लिए वायु का होना आवश्यक है। यही नहीं किन्तु वायु का अपने प्राकृतिक मिश्रण के साथ होना भी आ है, क्योंकि किसी अंश की अधिकता होने पर दशा विकृत हो जाएगी।

आग जलने के लिए वायु में ओषजन या आक्सिजन की आवश्यकता है। यदि ओषजन न हो तो आग ठंडी हो जाएगी। दृष्टान्त—यदि किसी अन्ध-कूप में जो अधिक गहरा हो, जलता हुआ दीपक उतारा जाए, तो दीपक भीतर पहुँच कर बुझ जाएगा। कारण यह है कि भीतर आँगारिकाम्ल का अंश अधिक मात्रा में है, और ऊपर से ओषजन पहुँचने नहीं पाता। फल यह होता है कि, दीप बुझ जाता है। इसी प्रकार यदि जलते हुए दीपक को ढक दिया जाए और इसमें बाहरी वायु स्पर्श न करने पाए तो वह बुझ जाएगा।

यह दशाएँ तो वे हैं जो आँगारिकाम्ल की अधिकता या ओषजन न होने से होती हैं, दूसरी ओर यदि ओषजन की अधिकता न हो तो आग भड़क उठेगी, ओषजन को किसी बासन में बन्द करके, यदि आँगारिकाम्ल को उसमें डाला जाए, तो परिणाम यह होगा कि वह बर्त्तन उड़ जाएगा, और ओषजन उसे तोड़ कर निकल आवेगी।

अस्तु ज्ञात हुआ कि उष्णता का आधार अग्नि है। जितनी तेज आग होगी उतनी ही प्रचण्डता उष्णता होगी। और आग तथा उसकी उष्णता

अग्नि और ताप

बनाए रखने के लिए आवश्यकता इस बात की है, कि ओषजन का अंश एक विशेष मिश्रण के साथ उससे सम्मिलित होता रहे। तुम जानते हो कि प्रत्येक प्राणधारी की देह में उष्णता होती है। इससे प्रकट होता है कि देह में भी आग के जलने और उष्णता उत्पन्न होने का प्रबन्ध है। हम अभी बता चुके हैं कि आग को शेष रखने और उष्णता स्थापित करने के लिए इसकी आवश्यकता है कि आग में ईंधन पड़ता रहे, और ओषजन पहुँचती रहे, अतः यह दोनों दशाएँ देह की उष्णता के सम्बन्ध में भी अवश्य होंगी।

देह की उष्णता

ध्यान देने से ज्ञात होगा कि देह की भट्टी हमारा आमाशय है। देह को उष्ण रखने वाली आग इसी अँगीठी में दहका करती है, इस आग का ईंधन प्रकृति ने भोजन को बनाया है, जो सब प्राणी साय प्रातः खाते हैं। आहार के वह अंश जो चरबी, तेल, शकर वा निशास्ता इत्यादि की भाँति होते हैं, मेदे में पहुँच ईंधन की भाँति सुलगने लगती है। वायु की ओषजन जो साँस के द्वारा आमाशय में पहुँचता है, इस ईंधन को जलाने और जठराग्नि और देह की उष्णता बनाए रखने में सहायता देती है।

जीवन और मृत्यु

यदि कोई व्यक्ति कुछ काल तक खाना न खाए, तो शनैः शनैः उसी के शरीर की उष्णता कम होने लगेगी और कम होते होते एक दिन नितान्त

(स का अ... को उष्णता का नष्ट हो जाना और देह का ठंढा होजाना ही मृत्यु है। यह वैसे ही होता है, जैसे आग में ईंधन न डालना। यह तो ईंधन की बात हुई अब वायु की अवस्था पर विचार करो। ईंधन के अभाव में, तो आग घुल घुल कर ठंढी होती है, और बुझते बुझाने में कुछ देर लगती है। किन्तु यदि साँस बन्द कर दी जाए और बाहर की शुद्ध वायु शरीर में न पहुँचने पाए, तो मनुष्य तुरन्त ही मर जायगा। इसका कारण, जैसा कि हमने अभी बताया है, केवल यही है कि आग को जलाने के लिए ओषजन आवश्यक है, जब ओषजन देह में न पहुँचने पाई, और केवल आँगारिकाम्ल ही शेष रही, तब आग बुझ जाएगी। याद करो कुएँ में छोड़ गए जलते दीपक की दशा को। यही दशा प्राणधारियों की है, उनका गला घोंटने पर एक तो बाहर की ओषजन भीतर नहीं आ पाती। दूसरे आँगारिकाम्ल भर जाती है, जो जठराग्नि को ठंढा कर देती है और मनुष्य मर जाता है।

शरीर गत वायु के सम्मिश्रण

तुम पढ़ चुके हो कि शुद्ध वायु में २ मुख्य अंश होते हैं। ओषजन, आँगारिकाम्ल, और लद्र्यजन। जब ओषजन आँगारिकाम्ल के साथ मिश्रित होकर जलती है, तब इससे जो वायु उत्पन्न होते हैं, उनका कारबन द्विओषद (कारबन डिआक्साइड) कहते हैं। ओषजन तथा अम्बुजन (हैड्रोजन) इन दोनों के संयोग

से पानी पैदा होता है। क्योंकि शरीर में स्वाभाविक उष्णता है, इस लिए जब ताजी वायु शरीर में प्रवेश करती है, तब देह की उष्णता उसे भस्म करती है, और कारवन द्विओषिद तथा पानी दोनों समान भाव से उत्पन्न होते हैं। यह रक्त में मिश्रित होकर हमारी नसों में दौड़ते रहते हैं और साँस के द्वारा देह से निकलते रहते हैं। अस्तु ज्ञात हुआ कि जो साँस शरीर से बाहर निकलते है उसमें ओषजन कम होजाती है और कारवन द्विओषद्, पानी उष्णता और अन्य विकारों के अंश अधिक होजाते हैं।

वायु और आहार से लाभ

तुम जानते हो कि आग को प्रज्वलित करने के लिए ईंधन की आवश्यकता होती है। दीपक को जलाने के लिए तैल की आवश्यकता होती है। इंजन को चलाने के लिए आग व पानी का आवश्यकता है। मोटर को चलाने के लिए पेट्रोल आवश्यक है, इसी प्रकार शरीर के अंगों को चालू रखने के लिए भोजन व शुद्ध वायु की आवश्यकता है। जो वस्तु किसी पदार्थ का अस्तित्व बनाए रक्खे और उसे चालू रख सके वह उस पदार्थ का आहार कहलाती है। आग का आहार ईंधन है, दीपक का आहार तेल, इंजन का आहार आग और पानी, मोटर का आहार पेट्रोल और जीवधारियों का आहार भोजन और शुद्ध वायु है। मनुष्य जीवन के लिए शुद्ध वायु परमावश्यक है। इसके बिना उसकी देह के अवयव काम नहीं दे सकते।

जो वस्तु किसी पदार्थ को अकर्मण्य बनादे और उसका अन्त करदे उसको विष या गरल कहते हैं। तुम जानते हो कि अन्धे कुएँ में, जिस में आँगारिकाम्ल भरी हो, और ओपजन न पहुँच सकती हो, दीपक बुझ जायगा। यदि मनुष्य के साँस को रोक दिया जाए, अथवा बाहर को ओपजन भीतर न जा सके और भीतर की आँगारिकाम्ल बाहर न आ सके अथवा उसे ऐसी कोठरी में बन्द कर दिया जाय जिसमे धुवाँ भरा हुआ हो, तो मनुष्य दम घुट कर मर जायगा। इससे ज्ञात हुआ कि जिस प्रकार शुद्ध वायु शरीर के लिए आहार का काम करती है, उसी प्रकार दूषित वायु जो कि आँगारिकाम्ल की अधिकता से स्वच्छ व मलीन हो जाती है, विष बन जाती है . जिस प्रकार आँगारिकाम्ल वाली वायु में विष रहता है, उसी प्रकार वह वायु भी हलाहल विष है, जो विकार जनित जहरीले कीटाणुओं से लदी हो। यह कीटाणु साँस द्वारा फेफड़ों में जाकर नानाप्रकार की भयावनी बीमारियाँ पैदा कर देते हैं जिनका परिणाम मृत्यु होती है।

वायु में विष और अमृत

इसीलिए स्वास्थ्य-रक्षा विधान वेत्ता इस बात पर बल देते हैं, कि मनुष्य को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहाँ की वायु दूषित न हो, और जहाँ शुद्ध वायु भरपेट मिल सके। घरों का रूप ऐसा हो, जिसमें प्रकाश और वायु प्रचुर परिणाम में आ सकें (शुद्ध वायु और के आने के लिए खिड़कियाँ और झरोखे होने चाहिएँ, और

उत्तम गृहों की विशेषताएँ

दूषित वायु के निकलने के लिए छतों में धुआँरा या चिमनी होनी चाहिए।

दूषित वायु उष्ण होती है, अतः सर्वदा ऊपर को उठती है और ठंडी वायु में मिलने की चेष्टा करती है। स्वच्छ हवा ऊपर से नीचे आने की चेष्टा करती है। इस बात का विचार तुम स्वयं कर सकते हो। किसी कोठरी में धुवाँ भर दिया जाय, और मनुष्य उसमें जाकर खड़ा हो जाय तो आंगारिकाम्ल की प्रबलता से उसका दम घुटने लगेगा, क्योंकि फेफड़े शुद्ध वायु चाहते हैं, और यहाँ उन्हें आंगारिकाम्ल से समाकीर्ण दूषित वायु मिलती है। यदि तुम बजाय खड़े रहने के कोठरी में बैठ जाओ, तो दम घुटना कम होजाता है, और साँस लेने में किंचित सुगमता होती है। इस भेद का यह कारण है कि आंगारिकाम्ल से व्याप्त मलीन वायु कोठरी के ऊपरी खण्ड में मडलाती है, और नीचे खण्ड में किंचित् कम है। शुद्ध वायु जो द्वार से आ रही है, वह नीचे के खण्ड ही में है।

कमरों में वायु के गमनागमन के मार्ग

तुमने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि, धुएँ में हमारा साँस या दम क्यों घुटता है? आओ हम तुम इस पर विचार करें। बात यह है कि विकारमय वायु में अम्बुजन का अंश कम होता है। और आंगारिकाम्ल का अंश स्वाभाविक मात्रा से

धुएँ में दम क्यों घुटता है

अधिक। तुम जानते हो कि, हमारे शरीर को सर्वदा अम्लजन की आवश्यकता होती है। साथ ही जो कार्बन द्विओषद् हमारे रुधिर में निरन्तर उपजती है उसको निकालना भी आवश्यक है। जब हम धुएँ में साँस लेते हैं, तब ओषजन की जगह आँगारिकाम्ल की भरी वायु हमारे फेफड़ों में पहुँचती है, और कार्बन द्विओषद् निकलने की जगह आँगारिकाम्ल की मात्रा उससे कहीं अधिक देह के भीतर पहुँच जाती है। परिणाम यह होता है, कि रक्त की पवित्रता और गति बिगड़ जाती है, और दम घुटने लगता है। अमरीका की एक महिला जिसका नाम ग्रेस डालिङ्ग था, एक बार अपने कमरे की खिड़कियाँ व द्वार बन्द किए हुए, सो रही थी। फल यह हुआ कि, बाहर की ओषजन से पूर्ण ताजी हवा कमरे में न आसकी। इसके विपरीत, कार्बन द्विओषद् ने, जो उसके साँसों से बराबर निकल रही थी, थोड़ी देर में कमरे को भर दिया। अब साँस लेने के लिये भी आँगारिकाम्ल की जहरीली वायु कमरे में रह गई। फल यह हुआ कि थोड़ी ही देर में वह स्त्री दम घुट कर मर गई।

अस्तु, वे लोग जो दूषित स्थानों में रहते हैं, निर्बल हो जाते हैं।

दूषित वायु में रहने का स्वास्थ्य पर प्रभाव

उनका मुख विवर्ण हो जाता है। मुख मण्डल पर चमक दमक नहीं रहती, देह पीला और जर्जर हो जाता है। यदि वह

किशोर वय के हुए तो वृद्धि रुक जाती है। शरीर में आलस्य का डेरा रहता है। तन्द्रा छाई रहती है। मस्तिष्क आकर्मण्य हो जाता है। स्मरण शक्ति बेकार हो जाती है। सिर में आठों प्रहर पीडा रहती है। क्षुधा मन्द पड़ जाती है। खाना नहीं पचता। आमाशय रक्त की कमी, और विकार के कारण अपना काम नहीं करने पाता। सारांश यह कि, सारे अग निरुत्तर हो जाते हैं। बीमारियाँ बलवती हो जाती हैं। परिमाण मृत्यु होता है। इसी लिए कहा जाता है कि शुद्ध वायु हमारे शरीर के लिए सुधा है और दूषित वायु हलाहल विष।

अभ्यास

(१) वायु के मुख्य अँश बताओ, और जिस मिश्रणाँश से वह शुद्ध वायु में पाए जाते हैं वर्णन करो।

(२) वृक्षों के नीचे की वायु कैसी होती है?

(३) वनस्पति वर्ग वायु का उपयोग कैसे करते हैं और प्राणी वर्ग से क्या अन्तर है?

(४) आग के लिए वायु की कोई आवश्यकता है या नहीं, प्रमाण दो?

(५) दीपक अन्धे कुएँ में क्यों बुझ जाता है। और साँस रोक लेने से मनुष्य किस प्रकार मर जाता है?

(६) यदि वायु के सयुक्त अशों में कमी बढ़ती हो जाए, तो उसका क्या परिमाण होता है?

(७) ताज़ी हवा हमारे शरीर को किस प्रकार मिलती है, और उसके क्या लाभ हैं ?

(८) जीव जन्तु की जिन्दगी के लिए कौन कौन सी वस्तुएँ और कहाँ तक आवश्यक हैं ?

(९) जो वायु साँस के द्वारा बाहर निकलती है, उसमें और ताज़ी हवा में क्या अन्तर है ?

(१०) दूषित वायु का दुर्गुण स्वास्थ्य पर कैसा होता है ?

(११) धूम्राच्छादित कोठरी में दम क्यों घुटने लगता है ?

(१२) रसोई घरों की छतें और दीवारों का ऊपरी भाग नीचे की भाग की अपेक्षा अधिक काला क्यों होता है ?

(१३) गृहों में वायु की क्या सभाल रखनी चाहिये ?

(१४) ग्रेस डार्लिंग की मृत्यु किस प्रकार हुई ?

(१५) शुद्ध वायु शरीर की सुधा और दूषित वायु विष क्यों कहलाती है ?

६—मादक द्रव्य

समस्त भूमण्डल पर, कोई स्थान ऐसा न होगा, जहाँ किसी न किसी प्रकार के नशे का प्रयोग न होता हो। ऐसे लोग विरले हैं, जो किसी प्रकार का नशा न वर्तते हों। परन्तु सोचना यह है, कि क्या मादक द्रव्यों के प्रयोग

में कोई लाभ है। परीक्षाओं से सिद्ध होगा कि, नशीली वस्तुओं में से कोई भी वस्तु ऐसी नहीं कही जासकती जो लाभदायक हो। सत्य तो यह है, कि प्रत्येक नशे में हानियाँ ही हानियाँ हैं। यदि कठिनता से कोई गुण निकले भी तो दुर्गुण इतने प्रचण्ड और अधिक मिलेंगे कि, उनकी तुलना में इस गुण का कोई मूल्य नहीं रहता। यों तो नशे की सैंकड़ों वस्तुएँ हैं, और प्रत्येक वस्तुओं के हजारों प्रकार हैं, परन्तु यहाँ संक्षेप में हम मुख्य मुख्य प्रकारों के मादक द्रव्यों का वृत्तान्त कहेंगे, जिनका प्रयोग संसार में अधिक होता है।

तम्बाकू (तम्बाकू)

नशे की वस्तुओं में सब से अधिक तम्बाकू का प्रयोग होता है। कोई देश ऐसा न होगा जहाँ इसका प्रचार नहीं। तम्बाकू को कई प्रकार से काम में लाते हैं [खाने में, पीने में, सूंघने में] खाने की तम्बाकू के अनेक प्रकार हैं—सादा पत्ती की तम्बाकू, बनी हुई पत्ती, दानेदार पत्ती, तम्बाकू की गोली, तम्बाकू का स्वत्व आदि। पीने की तम्बाकू भी इसी भाँति अनेक प्रकार की होती है—सूखी तम्बाकू या भुर्रा (खमीरा) जो हुक्के में पी जाती है, बीड़ी, सिगरेट सिगार। सूंघने की तम्बाकू भी कई प्रकार की होती है। ध्यान से देखो तम्बाकू में जहर मिलेगा। परन्तु इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता। स्त्रियाँ व बच्चे तक उसका प्रयोग करते हैं।

तम्बाकू की पत्ती के एक अँश को "नेकोटिन" कहते हैं। यही वस्तु तम्बाकू को स्वास्थ्य-नाशक बना देती है। नेकोटिन एक प्रकार का विष है। एक बूंद नेकोटिन यदि एक खरगोश के शरीर में प्रवेश कर दी जाय, तो वह तुरन्त मर जायगा। कुत्ते और बिल्ली की जीभ पर नेकोटिन की दो बूंदें डाल देना, उनके वध के लिए पर्य्याप्त है। विशुद्ध निकोटिन मनुष्य को भी मार सकता है। रसायनिक अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि ३ सेर तम्बाकू में एक छटाँक के लगभग नेकोटिन होती है।

तम्बाकू के दुर्गुण का अनुमान तुम इससे भी कर सकते हो, कि जो व्यक्ति तम्बाकू का प्रयोग कभी न करता हो, वह यदि तम्बाकू खा ले, या हुक्के का एक भी सूटा लगाये, तो उसको चक्कर आजावेगा। उसका जी मतलाने लगेगा। हृदय बड़े वेग से धड़कने लगेगा। यह सब बातें सिद्ध करती हैं, कि मनुष्य के अँग तम्बाकू के सांघातिक प्रभाव को सहने में असमर्थ हैं।

प्रकृति ने प्राणीमात्र में ऐसी शक्ति रक्खी है, जो स्वास्थ्य नाशक प्रभावों का विरोध कर उन्हें शरीर से निकाल दे। इसी का नाम आत्म निग्रह या प्राकृतिक चिकित्सा है। नाक के द्वारा यदि कोई कण वायु के साथ भीतर चला जाता है, तो चट छींक

आती है और वह निकल जाता है। यदि कोई वस्तु कण्ठ के भीतर गले में पहुँच जाय, तो खाँसी आ जाती है, और इस प्रकार उससे मुक्ति मिल जाती है। इसी भाँति मूत्र, पुरीष (मल), पसीना, साँस इत्यादि अन्यान्य द्वार हैं जिनसे शरीर के विष-संयुक्त विकार निकलते रहते हैं। इसीलिए जब तम्बाकू न पीने वाला मनुष्य तम्बाकू का प्रयोग करता है, तब उसे मतली होकर कै हो जाती है, दस्त आ जाते हैं। यदि तम्बाकू में नेकोटिन का विष न होता, किन्तु वही अंश होते जो फलों, शाकों या तरकारियों में होते हैं, तो यह बात न होती।

नेकोटिन के विष का अनुमान इससे हो सकता है, कि चीनी लोग हुक्के का पानी पीकर आत्मघात कर लेते हैं। हुक्के को कीट घोलकर पीने से भी मनुष्य मर जाता है, यह सब नेकोटिन का प्रभाव है।

परन्तु वह लोग जिनको तम्बाकू पीने की आदत पड़ जाती है, इस विष का अनुभव नहीं करते। जिस प्रकार लोहे का भारी कड़ा या साँकल पहिने रहने से शरीर का वह अंश सुन्न हो जाता है और उसे लोहा पहरने में किसी प्रकार की पीड़ा नहीं होती, इसी प्रकार तम्बाकू के विषय में समझो।

बहुधा लोग कहते हैं, कि सिगार की अपेक्षा सिगरेट में नेकाटिन कम होता है, अथवा इन दोनों की अपेक्षा हुक्का पीने से

कम हानि नहीं होती है। किन्तु, तम्बाकू तो हर में हानि ही करता है। क्योंकि निकोटिन न्यूनाधिक सब दशाओं में पाया जाता है। तम्बाकू पीने वालों के गले और नथूनों में खरोंच और जलन हो जाती है। कडुवे तम्बाकू के बिना तृप्ति नहीं होती। इनकी घ्राण-शक्ति लुप्त हो जाती है। जीभ सुन्न हो जाती है। मुख का स्वाद बिगड़ जाता है और जब तक चरपर वस्तु न हो, खाने का स्वाद नहीं मिलता। मिर्चें और मसालेदार तीखी वस्तुएँ खाने और तम्बाकू पीने से आमाशय में दाह उत्पन्न होता है। इससे प्यास प्रबल हो जाती है। इसलिए तम्बाकू पीने वाले मनुष्य, मदिरा सेवन प्रारम्भ करते हैं। साधारण पानी से इनकी तृषा नहीं मिटती। तम्बाकू पीने वाले यदि खट्टी वस्तु खा लें तो उनके दांत बे काम हो जाते हैं, यहाँ तक कि रोटी खाने में क्लेश होता है। तम्बाकू खाने और पीने वालों को बहुधा हृद्रोग होते हैं। हृदय में खुश्की आ जाती है। धड़कन बड़े वेग से होने लगती हैं। दिल की धड़कन में गड़बड़ पड़ जाती है। धुगधुगी चलते चलते अकस्मात् तेज हो जाती है। साँस बहुत तीव्र हो जाता है। अधिकांश दशाओं में हृदय शून्य होकर स्थगित हो जाता है। और तुर्त फुर्त की मृत्यु हो जाती है इसी लिए कभी कभी तम्बाकू विष खिलाने में काम आता है।

तम्बाकू का घातक प्रभाव जवानों की अपेक्षा बच्चों पर

अधिक पड़ता है। इस अवस्था में सारे अँग मृदु होते हैं। तम्बाकू के पीने वाले बच्चों की वृद्धि रुक जाती है। मुख की लोप हो जाती है, रंग फीका पड़ जाता है। गाल पचक जाते हैं, और शारीरिक उन्नति रुक जाती है।

तम्बाकू के पीने वालों की आयु क्षीण हो जाती है। इनकी देह पर शल्य क्रिया कुछ फल नहीं देती, प्रत्युत विनाश का कारण हो जाती है। तम्बाकू से दृष्टि में अन्तर पड़ जाता है। आँख की पुतली सिकुड़ जाती है। वयो वृद्धि में ऐसे लोग अन्धे हो जाते हैं। उनकी स्मरण शक्ति निर्बल हो जाती है। अतएव, अल्पवयस्कों और बच्चों को, विशेष करके बचाना चाहिए।

अभ्यास

(१) ~~नशे की वस्तुओं के सेवन से क्या हानि~~ होते हैं ?

(२) तम्बाकू कितने प्रकारों से प्रयुक्त होते हैं ?

(३) नेकोटिन क्या वस्तु है और उसके विषय में तुम क्या जानते हो ?

(४) तम्बाकू कभी न प्रयोग करने वालों पर तम्बाकू का क्या प्रभाव होता है ?

(५) प्रकृति तम्बाकू के दुर्गुणों को कैसे दूर करती है ?

(६) जिन लोगों को तम्बाकू खाने की आदत पड़ जाती है उन पर तम्बाकू का वही प्रभाव क्यों नहीं होता जो न खाने वालों पर आरम्भ ही में होता है ?

(७) तम्बाकू का प्रयोग करने से क्या क्या हानियाँ होती हैं और हमारे विविध अंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

(८) बालकों और अल्पवयस्कों के स्वास्थ्य पर युवा और बूढ़े लोगों की अपेक्षा तम्बाकू का कैसा प्रभाव पड़ता है ?

(९) अल्प वयस में तम्बाकू के व्यवहार से क्या क्या हानियाँ होती

—oo:o:oo—

ख—भंग और गाँजा

भंग एक प्रकार का वृक्ष होता है, उसकी पत्ती को ही साधारण भंग कहते हैं। भंग का प्रयोग कई रीतियों से किया जाता है। भंग की पत्तियों को सुखा कर कूट डालते हैं और आवश्यकतानुसार उस चूर्ण को पानी में पीस कर पीते हैं। इसे ही भँग या ठंढाई कहते हैं। भंग की डंठलों और पत्तियों पर एक प्रकार का गोंद होता है। इस गोंद को खुर्च कर तम्बाकू की जगह चिलम में पीते हैं। इस गोंद को चरस, या दुर्रा कहते हैं। भंग के फूलों या कलियों के गुच्छे भी जिन पर गोंद चढ़ा होता है चिलम में तम्बाकू की भाँति पिए जाते हैं।

भंग के फूलों को गाँजा या कली कहते हैं। भंग को हिन्दी में शिव बूटी और विजया भी कहते हैं। क्योंकि पौराणिक मतानुसार कहावत है कि शिव-महादेवजी को यह वस्तु बड़ी प्रिय थी। अस्तु।

भंग की पत्तियाँ छोटी, पतली, लम्बी और दानेदार होती हैं। पत्तियों पर बारीक रोएँ होते हैं। पत्ती का रंग कालापन लिये
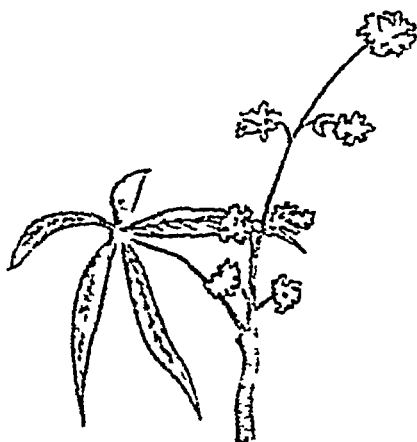
(भंग का वृक्ष—पुष्प-पत्र समेत)

पालाश के रंग का होता है। भंग के बीजों पर चमकर आवरण चढ़ा होता है। कच्चे बीज पीलापी लिये मटमैले रंग के होते हैं। परिपक्व हो जाने पर ये भूरे रंग के हो जाते हैं। इन पर श्वेत आवरण चढ़ जाता है।

भंग का अँग प्रत्यंग, चाहे वह पत्ती हो चाहे फूल अथवा गोंद, नशे के लिये काम में आता है। इसका प्रभाव ठीक वैसा ही होता है जैसा अन्य मादक वस्तुओं का। भंग का मुख्य प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। इससे मस्तिष्क बेकाम हो जाता है। यदि थोड़ी मात्रा में भंग का प्रयोग हुआ, तो हलका नशा होता

है, और मस्तिष्क में विशेष प्रकार की भ्रान्ति होती है। वस्तुएँ हरी-हरी दीखती हैं। जान पड़ता है कि मनुष्य आकाश में उड़ रहा हो। कभी ऊपर जाता है कभी नीचे आता है। मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने से अद्भुत-अद्भुत विचार उठते हैं। नाना प्रकार के विचित्र रूप या आकार दृष्टि पड़ते हैं। पाशविक वासनायें प्रबल हो जाती हैं। मनुष्य तरंग में पड़कर कभी हँसने लगता है, कभी गीत गाता है, कभी अट्टहास करता है। सारांश यह है कि नशे की दशा में उसे ध्यान नहीं रहता कि मैं क्या हूँ कहाँ हूँ और क्या कर रहा हूँ। यदि मात्रा अधिक हो गई, तो नशा गहरा हो जाता है और मनुष्य अपने आपे में नहीं रहता। प्रचण्ड मद की दशा में उन्माद हो जाने से, विविध बातें बकने लगता है। ऐसी दशा में कठिन-से-कठिन अपराध बिना विचारे कर बैठता है। जब नशा प्रबल होता है, तब नसों और नाड़ियों में मरोड़ होने लगती है, जिससे शरीर को पीड़ा होती है, किन्तु नशे की दशा में इसका बोध नहीं होता। उसके पश्चात् निद्रा आ जाती है। मस्तिष्क पर मादकता के कारण स्वप्न-ही-स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। नशा अधिक परिमाण में प्रयोग करने पर सांघातिक दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर के निपट निर्जीव हो जाते हैं। तदुपरान्त मूर्छा आ जाती है। हृदय निश्चेष्ट हो जाता है और मनुष्य चटपट मर जाता है।

भंग में यह दुर्गुण है कि, वह चैतन्य को निर्बल करती है,

और स्नायु व पट्ठों को सुन्न कर देती है। नशे की दशा में मनुष्य कितना ही खाता चला जाए क्षुधा शांत नहीं होती। देह में झुन-झुनी बोध होती है। हृदय की गति कभी तीव्र हो जाती है कभी मन्द। यही दशा श्वांस और रक्त के संचार की होती है। नशे की दशा में ताप बलवान हो जाता है और नींद आने पर ज्वर उतर जाता है। भंग व गाँजे के अधिक सेवन से नाना प्रकार के रोग यथा-अपच्य, दुर्बलता, खाँसी, उदर वृद्धि, सन्निपात का धावा, उठ खड़े होते हैं, मति-भँग हो जाती है। मस्तिष्क विकृत हो जाता है, और मनुष्य सदा के लिए विक्षिप्त, हो जाता है। कभी कभी यह उन्माद कुछ कालोपरान्त, स्वयं उतर भी जाता है। भंग के नशे में पुरानी शत्रुता या वैर भाव की स्मृति ताजी हो जाती है, और मनुष्य घोर प्रतिहिंसा पर उतारू हो जाता है।

भंग का नशा उतारने के लिए तरकारियों का नमक, नींबू का सत्त इत्यादि का देना, और शीतल जल को सिर और शरीर पर डालना लाभदायक है।

तुमने देखा कि, भंग कैसी नाशकारी वस्तु है। किन्तु, होली, दीवाली या अन्य उत्सवों के अवसरों पर साधारण लोग धड़ल्ले से इसका सेवन करते हैं। माजूमें बनती हैं और मिष्टान्न बनाये जाते हैं।

साधुओं, चौपों, पण्डों, और वैरागियों में इसका विशेष प्रचार है। परन्तु स्मरण रखो, बुरी वस्तु सदा सर्वदा बुरी ही होती है चाहे उसको कोई महापुरुष ही सेवन क्यों न करता हो॥

अभ्यास

(१) भंग किसे कहते हैं, और कितनी रीतियों से उसका सेवन किया जाता है?

(२) भंग के फूल, पत्ति और बीज इत्यादि का विशद वर्णन करो।

(३) भंग का कौन कौन अंग नशे के लिए प्रयोग में आता है?

(४) भंग की तरंग (नशे) में मनुष्य की क्या दशा होती है?

(५) भंग के सेवन से शरीर के अंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(६) भंग के अपगुण बताओ।

(७) भंग, साधारणतः कौन २ लोग अधिक सेवन करते हैं और किस तात्पर्य से?

(८) भंग की मादकता का शरीर के किन अंगों पर अधिक प्रभाव पड़ता है, और उसका क्या फल होता है?

(९) भंग का नशा उतारने के क्या उपाय हैं?

ग—मदिरा

नशों में मदिरा का बहुत प्रचार है। मदिरा अनेक प्रकार की होती है, और अनेक रीति तथा अनेक वस्तुओं से बनाई जाती

हैं। नशा किसी में न्यून किसी में अधिक, होता सब में है। मदिरा के उस तत्त्व को जो नशा पैदा करता है, "अलकोहल" कहते हैं, विष शरीर के सब अंगों को दूषित कर डालता है। मदिरा में अलकोहल का वही स्थान है जो तम्बाकू में निकोटिन का।

अलकोहल के विष का अनुमान इस बात से हो सकता है, कि यदि मछली या कछुए को पानी में मिलाकर अलकोहल का केवल १/६ अंश दे दिया जाय, तो उनकी मृत्यु हो जायगी।

तुम जानते हो कि यदि किसी रसीले फल को तोड़ कर दो एक दिन के लिये रख दिया जाए, तो वह सड़ने लगता है। इसी प्रकार जीव जन्तु की लाश अधिक दिन पश्चात सड़ने लग जाती है, किन्तु यदि इन वस्तुओं को मदिरा में रख दिया जाए, तो यह बरसों तक नहीं बिगड़तीं। इसका कारण यह है कि, अलकोहल के कारण वह कीटाणु जो इन वस्तुओं को सड़ाने वाले हैं, स्वयं मर जाते हैं, और यह वस्तु विकृत नहीं होने पातीं।

इसी प्रकार यदि अण्डे की सुफेदी को मदिरा में डाल दिया जाए, तो सुफेदी जम जायगी। जिन लोगों ने डाक्टरी पढ़ी है, वे जानते हैं कि, मनुष्य का आमाशय, हृदय और स्नायु-जाल लग भग उन्हीं वस्तुओं से बनती हैं, जिनमे अण्डे की सपेदी बनती है। अतः स्पष्ट है, कि, मनुष्य के शरीर पर भी मदिरा का वही प्रभाव होता है जो अण्डे की सपेदी पर।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं, कि जो वस्तु मनुष्य के लिए हानिकर है, उसको स्वभाव स्वीकार नहीं करता, इस लिए तम्बाकू सेवन से पहले पहल मतली होती है, और वमन हो जाता है। इसी भाँति प्रथम सुरापान से कै हो जाती है।

मदिरा की अनेक हानियाँ हैं, मदिरा से शारीरिक शक्ति घट जाती है, और वृद्धि रुक जाती है। बाल्यकाल में मदिरा सेवन और भी भयंकर है। मदिरा पीने के उपरान्त मनुष्य का मस्तिष्क ठीक नहीं रहता। हाथ पैर बेबस हो जाते हैं, शरीर के पट्ठे तन जाते हैं, जिह्वा स्थूल हो जाती है और चलने में पाँव काँपते हैं। मस्तिष्क दूषित होने से मनुष्य की मति भग हो जाती है, अच्छे बुरे की पहिचान नहीं रहती। एक सभ्य से सभ्य परम उदार सुशील प्रकृति का मनुष्य भी सुरा पीने के पश्चात् प्रलाप और दुर्वाद बकने लगता है, वह पवित्रता और अपवित्रता में कोई भेद नहीं कर सकता। जब नशा अधिक होता है, तब मस्तिष्क चेतना शून्य होने लगता है और शराबी पर तन्द्रा छा जाती है।

लोगों का विचार है कि यदि मदिरा थोड़ी मात्रा में पी जाए, तो हानि नहीं करती। यह लोग शरीर के भीतर की दशा देखें, तो उन्हें पता चलेगा कि मदिरा की थोड़ी मात्रा भी यकृत वृक्क, फेफड़े, आमाशय यहाँ तक कि शरीर की नस नस दूषित कर देती है। मदिरापान से वह किटाणु जो रक्त में उत्पन्न होकर रोगों को दूर करने में सहाय्य देते हैं, निष्क्रिय हो जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सुरा सेवन करने वाले को जो रोग भी होते हैं,

यह कठनाई से अच्छे होते हैं। सुरापानादि के दोष पुत्र पौत्रादि तक चलते हैं।

अनुभव से प्रमाणित हुआ है कि शराबी लोगों की आयु क्षीण हो जाती है, यह नित्य नूतन रोगों के आखेट बनते रहते हैं। रोग एक बार आकर फिर जाने का नाम नहीं लेते, किन्तु दिन प्रति दिन बढ़ते ही जाते हैं, इसकी परीक्षा कई प्रकार से हो सकती है, गेहूँ या किसी अन्य अन्न को तीन अलग अलग क्यारियों में बो दो एक क्यारी को मदिरा से सींचो, दूसरी को जल से, और तीसरी को मदिरा व जल दोनों मिलाकर। मदिरा से सींची हुई खेती शीघ्र उग आएगी, परन्तु बहुत शीघ्र ही सड़ भी जाएगी, मदिरा और जल से सींची हुई उसके पश्चात नष्ट होगी और केवल पानी से सिंचित खेती सबसे अधिक काल तक रहेगी। फल तो सिवाय पानी वाली खेती के और किसी क्यारी में न लगेंगे।

मदिरा का कुटेव छोड़ने के लिए सबसे पहले मनुष्य को दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उसके पश्चात् यदि तम्बाकू सेवन करता हो तो उसे भी त्याग दे, ताजे फल खाए और शीतल जल पिए। उष्ण जल से स्नान करे, और नहा कर ठंडा पानी देहपर डाल ले। यह प्रक्रिया करते रहने से शराब की बान छूट जाती है।

कुछ लोग मदिरा से लाभ बतलाते हैं। यह उनकी गलती है। लोग मद्य को पानी के स्थान पर पीते हैं, और

इसे आहार समझते हैं। तुम जानते हो कि सब आहार देह के भीतर परिवर्त्तित होते हैं। देह में आर्द्र वा उष्णता उत्पन्न करते हैं। जिन २ पदार्थों की त्रुटि होती है, उसे भरण करते हैं और शरीर की श्रीवृद्धि करते हैं, परन्तु मदिरा पान में इसके विरुद्ध होता है। यह जैसे ही देह के भीतर जाती है, वैसे ही पसीने अथवा मल मूत्र के द्वारा बाहर निकल आती है।

बहुत से लोग परिश्रम के पश्चात् मदिरा पीते हैं, परन्तु यह हानिकारक है। सुरा शरीर और मस्तिष्क को सुन्न और चेतना होन कर देती है। इसीलिये मदिरापान के पश्चात् थकान बोध नहीं होता। शराब के विषय में कहा जाता है कि वह देह में स्फुर्त्ति लाती है, ठण्डक से बचाती है, और ताप से सुरक्षित रखती है, परन्तु यह   है। वास्तव में मदिरा से रक्त में उत्तेजना होती है, और शरीर का प्रत्येक अंग जिसमें खून के द्वारा मद्य का विषैला प्रभाव पहुँचता है, इसको दूर करने का यत्न करता है, जिसको लोग भ्रम से स्फूर्ति समझते हैं। यह सत्य है कि मदिरा से शरीर में ताप प्रबल हो उठता है, किन्तु यह प्रभाव क्षणिक है, इसके पश्चात् ठंडक ज्ञात होने लगती है। मदिरा ग्रीष्म-काल की प्रचण्डता को भी नहीं रोकती, यद्यपि लोगों को लू अधिक लगा करती है।

संक्षेप में वह कहते हैं कि मदिरा से हानि ही हानि है, लाभ कुछ नहीं॥

अभ्यास

(१) मदिरा किसको कहते हैं ?

(२) मदिरा में वह कौन सा प्रधान अंश है, जो सब प्रकार की मदिरा में न्यूनाधिक पाया जाता है ?

(३) मदिरा का वह कौनसा अंश है, जो विषैला और स्वास्थ्य-नाशक बना देता है ?

(४) अलकोहल का प्रभाव मनुष्य के भिन्न भिन्न अंगों पर कैसा पड़ता है ? उदाहरण देकर समझाओ ।

(५) मस्तिष्क पर अलकोहल का क्या प्रभाव पड़ता है ?

(६) क्या मदिरा ग्रीष्म और सर्द ऋतुओं में दुष्प्रभाव से रोकती है ? सविस्तार वर्णन करो ।

(७) मदिरा की क्या क्या हानियाँ हैं ?

(८) मदिरा यदि थोड़ी मात्रा में सेवन की जाए, तो इस से कोई हानि होती है अथवा नहीं ?

(९) मदिरा का मनुष्य के साधारण स्वास्थ्य और आरोग्यता पर क्या प्रभाव होता है ?

(१०) मदिरा और पानी दोनों का आहार से मिलान करो ?

(११) मदिरा के क्या लाभ कहे जाते हैं और उनकी यथार्थता क्या है ?

(१२) मदिरा छोड़ने के क्या उपाय हैं ?

घ—अफ़ीम

नशों में अफ़ीम भी अच्छा स्थान रखती है । अफ़ीम, वस्तुतः पोस्त के फल का दूध है । दूध जमा कर, अफ़ीम बना लेते हैं ।

छाफूक या अफीम भी नाना प्रकार की रीतियों से काम आती है। गोली बना कर खाई जाती है। पानी में घोल कर पी जाती है। हुक्के की भाँति पी जाती है। पिछले प्रकार को "चाँडू" कहते हैं। अफीम कराल विष है।
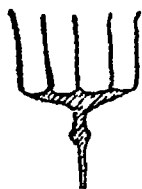
छेद देने (पाछने) का कांटा

पोस्त का फूल

पोस्त की ढोंडी और भीतर का भाग।
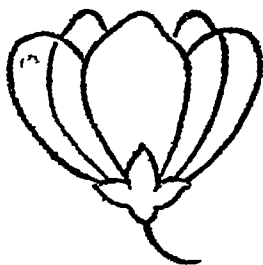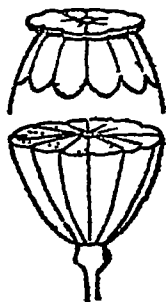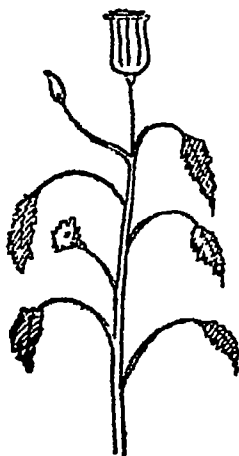
पोस्त का पेड़।

होता है कि, मुँह, जिह्वा, और कण्ठ सूख जाते हैं । अफ़ीम तरी को सोखती है, और खुश्की पैदा करती है। दूसरा प्रभाव इसका आमाशय में पहुँच कर प्रारम्भ होता है । आमाशय तथा आँतों की प्राकृतिक आर्द्रता, जो आहार के पचने और आमाशय को अपनी पूरी प्रक्रिया करने के लिए आवश्यक है, सुखाने लगती है, जिसका परिणाम यह होता है कि, आमाशय और उसकी अन्तरंग संस्था विकृत हो जाती है। आँतों की आँतरिक त्वग सन्न होती है । भूख मिटने लगती है । पाचन शक्ति में गड़बड़ी हो जाती है, दस्त आने लगते हैं। देह भीतर ही भीतर घुलने लगती और सूख कर काँटा हो जाती है। आँख का कोया धँस जाता है, और देह में रक्त बिन्दु नहीं रहते । जान पड़ता है अस्थि पिंजर पर खाल मढ़ दी गई हो ।

अफ़ीम का प्रभाव मनुष्य की स्नायुओं और पट्ठों पर विशेष रूप से होता है। अफ़ीम खाने के उपरान्त. पहिले तो शरीर की नाड़ियों पर मादक प्रभाव छा जाता है, फिर मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है, अन्तःकरण में उग्रता और विकीर्णता उत्पन्न होती है, और एक प्रकार की मोहिनी छा जाती है, इसी अवस्था के थोड़े समय पश्चात् झपकी आती है, जिसे "पीनक" कहते हैं। निद्रा का मोह उतर जाने पर तो सिर पीड़ा होती है, और चक्कर आने लगता है।

अफ़ीम अधिक खा जाने से, मस्तिष्क व्याकुल होजाता है, बुद्धि क्षुद्र हो जाती है, न आँख काम करती है न ज्ञान न चित्त। इस दशा में, अफ़ीम का प्रभाव मस्तिष्क पर वैसा ही होता है, जैसा अलकोहल या क्लोरोफ़ार्म का। अफ़ीम खाने वालों की देह अवसन्न हो जाती है। उन्हे यन्त्रणाओं का बोध नहीं होता।

पीनक की दशा में अफ़ीमी लोग गिर पड़ते हैं, चोट लगती है, खून निकल आता है, जल जाते हैं; परन्तु उन्हे कष्ट ज्ञात नहीं होता। यदि अफ़ीम बहुत अधिक खा ली जाये, तो विक्षिप्तता की दशा बन जाती है, और मूर्छा आ जाती है।

अफ़ीमची लोग गन्दे होते हैं। वे पानी से डरते है, और कभी नहीं नहाते। इनकी यह धारणा होती है कि स्नान करने से अफ़ीम का नशा उतर जाता है। उनके सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"या नहलाए दाई या नहलाएँ चार भाई" तात्पर्य यह है कि या तो जन्म समय उनको दाई स्नान कराती है और या मर जाने पर चार जने स्नान कराते हैं।

हम बता चुके हैं कि मारफेन (मोरफ़िया) और नेकोटिन कठिन विष हैं। अतः, अफ़ीम मारने के काम मे आता है। इस काम के लिये अफ़ीम खिलाते-पिलाते हैं, और तीन बार देह पर पोत देते हैं। उसका विष मारने के लिए, इसे देह से पोंछ देना चाहिये। यदि अफ़ीम खिलाई- [illegible] हो, तो एरण्ड की

पत्ती पीसकर रोगी को पिला देनी चाहिएँ और बारम्बार क़ै करानी चाहियें। वैद्यक-क्रिया द्वारा आँतों को धोना चाहिए। रोगी को जगाते रहना चाहिए। ठंडे पानी के छींटे मुँह पर बार-बार मारे जायें. और तौलिया से भिगोकर निरन्तर वायु की जाय। रोगी को टहलाना चाहिये। यदि शरीर ठंडा हो जाए, और मूर्छा की दशा हो, तो टहलाना अयुक्त है। यदि रोगी में पीने की सामर्थ्य हो, तो गरम कहवा पिलाया जाए और नास दिया जाए। १० से लेकर १५ ग्रेन तक पोटासियम परमैंगनेट १½ छटाँक से लेकर पाव-भर तक पानी में मिलाकर आध-आध घण्टे पश्चात् चार बार पिला देने पर भी लाभ होता है।

तुम समझ गये होगे कि मादक द्रव्यों का सेवन क्या-क्या हानियाँ पहुँचाता है। आरोग्यता चाहने वाले मनुष्यों को मादक वस्तुओं का भी सेवन न करना चाहिये।

अभ्यास

(१) अफ़ीम क्या वस्तु है, और किस प्रकार प्राप्त की जाती है?
(२) अफ़ीम कहाँ पैदा होती है, और प्रयोग की कितनी रीतियाँ हैं?
(३) अफ़ीम के सेवन से हमारे शरीराङ्गों पर क्या प्रभाव पड़ता है?
(४) पीनक से तुम क्या समझते हो, और पीनक कब होती है?
(५) अफ़ीम से क्या-क्या हानियाँ होती हैं?
(६) अहिफ़ेन का विष दूर करने की क्या चिकित्सा है?

७—भोजन

आहार

तुमने देखा होगा कि रेल का इंजन सुगमता से हजारों मन बोझ घसीटता हुआ तेज गति से सैकड़ों कोस भाग जाता है। परन्तु पराक्रम का यह काम लोहे के उस ढाँचे का नहीं है, जिसका नाम इंजन है; किन्तु आग, पानी तथा कोयले का है। कोयला तथा पानी कम होते ही इंजिन खड़ा हो जाता है। कोयला झोंकते रहने से आग जलती रहती है। आग से पानी खौलता है, और भाप बनता है, भाप के द्वारा इंजिन चलता है और बोझ खींचता है। कोयला और पानी इंजिन का आहार है। यदि आग या पानी कम पड़ जाएँ, तो न भाप बनेगी, न रेल चलेगी और न इंजिन आगे दौड़ सकेगा।

आहार का नियम

ठीक यही दशा हमारे देह की है। हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न अंग जैसे—मस्तिष्क, हृदय, स्नायु, आँख, कान, हाथ, पाँव आदि को चालू रखने के लिए रक्त के संचार की आवश्यकता है। रक्त-संचार जठराग्नि से होता है, और जठराग्नि उन्हीं वस्तुओं से बनती है, जिन्हें हम खाते और पीते हैं। यह वस्तु हमारे शरीर को कर्मण्य बनाए रखती है। जो वस्तुएँ इन मन्तव्य को पूरा करती हैं, उन्हे आहार कहते हैं। जिनसे यह कार्य नहीं होता, उदाहरणार्थ कंकड़-पत्थर इत्यादि वे आहार नहीं कहलातीं। जब

किसी वस्तु की त्रुटी होती है, प्रकृति इसकी प्रेरणा करती है। भूख, प्यास, नींद, थकावट इत्यादि एक प्रकार की सूचनायें हैं, जो त्रुटि या दोषों को जताती हैं। यदि सूचना पर ध्यान न दिया गया, तो शरीर का यन्त्र रुक जायेगा और मृत्यु हो जायेगी।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रकृति ने खाने-पीने की वस्तुएँ यथा—अन्न, फल, तरकारी और जल आदि उत्पन्न किये हैं। इन सब में न्यूनाधिक मात्रा में रक्त उत्पन्न होता है। शरीर बलिष्ठ होता है, दिन-प्रतिदिन के प्रयोग के शरीर में होने वाले दोषों की पूर्त्ति होती है।

अमिताहार

अस्तु, ज्ञात हुआ कि खाने-पीने का उद्देश्य जीवन को बनाए रखना है। परन्तु लोग खाने-पीने ही को जीवन का उद्देश्य मान बैठते हैं। ऐसे मनुष्यों को फल भी भोगने पड़ते हैं। क्योंकि जो बात पहिली दशा में लाभकारी थी, वह अब क्रम-व्यत्यय हो जाने से प्रतिकूल बन गई। उदाहरणार्थ, पानी से भरे टब में यदि धधकता हुआ अँगारा डाल दिया जाय, तो आग ठंडी हो जायेगी। परन्तु यदि टब में अँगारे भर दिये जाएँ, और अँगारे की भाँती पानी की मित-मात्रा टब में डाली जाए, तो आग ठंडी न होगी प्रत्युत ज्वाला उत्पन्न हो जायगी। यदि सेर-भर के पात्र में सेर-भर या उससे कुछ कम चावल डाले जाएँ

तो भली भाँति पक जाएँगे, किन्तु यदि उसमें दो सेर चावल छोड़ दिये जायँ, तो भोजन बिगड़ जायगा, और चावल का एक दाना भी न पक सकेगा।

ठीक यही दशा आमाशय की है। भोजन करने से जब तक पेट भर नहीं जाता तब तक भूख लगती रहती है, परन्तु ज्योंही उचित परिमाण में आहार खा लिया गया, भोजन की इच्छा नहीं रहती। ऐसी दशा में भोजन करने से हाथ रोक लेना चाहिये। जो ऐसा न करेगा वह अपनी करनी का फल पावेगा। जब पाक-स्थली (मेदा) में मात्रा से अधिक आहार पहुँच जायेगा, तब वह फूल जायेगी और उसमें फैलने और सिकुड़ने का स्थान न रह जायेगा। आहार के पूर्णरूप से पचने के लिए आमाशय की थैली का बारम्बार फैलना और सिकुड़ना आवश्यक है, जिससे पचाने वाली आर्द्रता भली भाँति मिल सके, और आहार को पतला करके आँतों में पहुँचा दे।

हम बता चुके हैं कि आहार का मन्तव्य शरीर-पोषण है। यह बात उसी समय हो सकती है, जब भोजन उचित मात्रा में किया जाये। आमाशय को अपना काम करने का पूरा अवसर दिया जाये। आहार भली भाँति पच जाये और विशुद्ध रक्त बने। यदि मात्रा अधिक हो गई, तो पतीली के चावलों की भाँति सारा आहार दूषित हो जायेगा। न तो आहार पच सकेगा, न उत्तम रक्त ही बन सकेगा और न शरीर के सारे

अवयवों को चालू रखने के लिए आहार ही प्राप्त हो सकेगा। परिणाम यह होगा कि हमारे शरीर का यन्त्र बिगड़ जायगा। भूख से अधिक आहार आमाशय में नहीं समाता। वह क़ै या वमन के द्वारा बाहर निकल पड़ता है। यदि पेट में रह गया, तो ठीक प्रकार से पचेगा नहीं। ऐसी दशा में दस्त आने लगते हैं। ज्वर और सिर पीड़ा होने लगती है, पेट में पीड़ा होती है, और रोगी को नाना यातनाएँ बोध होती हैं। यदि कुछ काल तक यही असावधानी होती रही, तो आमाशय निर्बल हो जाता है। उसमें आहार पचाने की सामर्थ्य नहीं रहती। यदि अनपच्य आहार कहीं सड़ने लगा, तो उसमें विष उत्पन्न हो जाता है और विशूचिका (हैज़ा) हो जाती है, जिसका कुफल कभी-कभी मृत्यु हो जाती है। इसलिए भोजन मात्रा में करना चाहिए। आहार सूक्ष्म होना चाहिए, जिससे आसानी से पच जाये।

भूख से कम खाने में आहार का पूरा लाभ होता है। रगों और पट्ठों के संचालन की दैनिक क्षति पूरी हो जाती है। रक्त प्रचुर परिमाण में बनता है। प्रस्वेद (पसीना) उत्पन्न होता है और देह की उष्णता में सहायता मिलती है।

भूखा रहना

जिस प्रकार भूख से अधिक भोजन करना बुरा है। उसी भाँति पेट भर भोजन न मिलना भी हानि पहुँचाता है। विशेषतः बच्चों के स्वास्थ्य पर उसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उनका शरीर वृद्धि

हो जाती हैं, भोजन के मध्य ४ घंटे का अन्तर होना चाहिए अवकाश में आमाशय एक भोजन को पचा कर दूसरे भोजन को ग्रहण करने के लिए उद्यत हो जाता है। जब तक खुलकर भूख न लगे तब तक खाना न खाना चाहिए, दिन में कम से कम दो बार खाना चाहिए, परन्तु नियत समय पर। दिन में चार बार थोड़ा थोड़ा खा लेना अधिक लाभदायक है।

प्रातःकाल उठ कर दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर थोड़ा कलेवा कर लेना चाहिए। क्योंकि रात भर काम कर चुकने के उपरान्त प्रभात वेला में आमाशय खाली हो जाता है और उसे आहार की आवश्यकता होती है। इसके उपरान्त फिर दिन का भोजन करना चाहिए। तीसरे पहर भूख लगे तो सूक्ष्म जल पान कर लेना चाहिये। उसके पश्चात् रात्रि का भोजन है। रात्रि का भोजन सोने से दो तीन घंटे पहले खाना चाहिए, भोजन कर के तुरन्त सो रहना स्वास्थ्य को हानिकारक है।

अभ्यास

(१) आहार की व्याख्या करो। और बताओ कि, मानुषी आहार से क्या लाभ है?

(२) भूख कब और क्यों लगती है?

(३) जीवन काल में भोजन का क्या उद्देश्य होना चाहिए?

(४) आमाशय का क्या काम है?

(५) भूख से अधिक खा लेने की हानियाँ बताओ।

(६) भर पेट भोजन न प्राप्त होने से शरीर पर क्या प्रभाव होता है?

(७) भोजन के समय पाचन का नियम कैसे बर्तना चाहिये?

(८) रात का भोजन किस समय खाया जाए?

(९) भोजन में असावधानियों की हानियाँ बताओ?

८—छूत के रोग

(अ) जाड़ा-बुखार

जाड़ा-बुखार, या मलेरिया एक प्रकार की बीमारी है, जिसके रोगाणु मनुष्य के रक्त में पैदा हो जाते हैं। मलेरिया फैलाने वाले मच्छर विशेष प्रकार के होते हैं। यह साधारण मच्छरों से आकार प्रकार में बड़े होते हैं। मलेरिया ठण्ड लग कर चढ़ता है। हाथों और पाँवों की अँगुलियाँ ठंडी पड़ जाती हैं। अंग टूटने लगते हैं, और आलस्य छा जाता है। जँभाई आती हैं। ठंड के बढ़ते-बढ़ते नजला हो जाता है। दाँत कट-कटाने लगते हैं। थोड़ी देर पश्चात् जाड़ा लगने लगता है और वेग से ज्वर चढ़ता है। प्यास सताती है। मुख का स्वाद कड़वा हो जाता है। कुछ काल बीतने पर पसीना बहने लगता है। पुनः ज्वर का ताप घटने लगता है। रोगी चैतन्यता में आता है। परन्तु अब उसको अपना सारा शरीर चूर-चूर जान पड़ता

है। प्रत्येक जोड़ में पीड़ा होती है। सिर में भी व्याधि होने लगती है। ज्वर और प्यास की प्रबलता में लोग ठंडा पानी पी लेते हैं। परिणाम यह होता है कि जिगर में सूजन हो जाती है, और पिलही बढ़ जाती है। मलेरिया का ज्वर वारी देकर आता है।

मलेरिया ज्वर उन स्थानों में जो विषुवद्रेखा पर या उसके निकट हैं, अधिकाँश होता है। जितना भूमध्य-रेखा से दूर होते जाओ, कम होता जायगा। अतएव, शीत प्रधान देशों में मलेरिया कम होता है, और यदि होता भी है तो बहुत साधारण। ५०० फ़ीट सरीखे ऊँचे स्थानों पर तो शून्य के बराबर होता है।

आस्ट्रेलिया व यूरोप की अपेक्षा एशिया में मलेरिया अधिक होता है। चीन, ब्रह्मा, भारत, लंका इत्यादि मलेरिया के लीला-निकेतन (घर) हैं। भारतवर्ष में बंगाल और आसाम इस रोग के आवास स्थल हैं। अफ़रीका के पश्चिमी तट पर यह संसार-भर में सब अधिक होता है।

प्रायः देखा गया है कि जिन स्थानों की जल-वायु में मलेरिया के कीटाणु होते हैं, वहाँ के निवासियों पर प्रारम्भ काल में इस रोग के धावे थोड़े होते हैं। ऐसे स्थानों पर जवानों पर और बूढ़ों को बच्चों की अपेक्षा बुखार-जाड़ा कम लगता है। उसका कारण यह है कि बाल्यकाल में इस रोग के आक्रमण हो चुकते हैं। मलेरिया

वाले स्थलों पर जो लोग नय-नये जाते हैं, उन पर यह दुष्ट रोग अवश्य आघात करता है। परन्तु उसके विरुद्ध उन स्थलों के असली रहने वाले सुरक्षित रहते हैं।

भारतवर्ष में शीतज्वर की ऋतु साधारणतः जून मास से आरम्भ होती है, और दिसम्बर पर्यन्त रहती है। परन्तु सितम्बर, अक्तूबर व नवम्बर में वह विशेष प्रकोप करती है। मलेरिया की ऋतु अधिकतर बरसात में होती है। जब वर्षा सामान्य ही होती हो, या रुक-रुक कर बरसती हो, तो मलेरिया फैलता है विशेषत: ऐसे स्थानों पर जहां पानी के निकास का काफी प्रबन्ध न हो और नालियां, मोरी इत्यादि भली भाँति न बहते हों। जिस स्थान की भूमि गीली हो, दलदली हो बस्ती के समीप गड्ढे, जलाशय, झीलें या नाले आदि हों, जंगल-झाड़ियां हों, भूमि को पहिली बार सींचकर कृषि योग्य बनाया गया हो, नहर खोदी जाती हो। जंगल काटकर नई बस्ती बनाई गई हो, नीची जमीन हो, आस-पास धान व जूट के खेत हों, तो मलेरिया फैल जाता है। क्योंकि इन वस्तुओं की खेती मे पानी का काम रहता है और खेतों में पानी लबालब भरा रहता है। यही कारण है कि नगरों की अपेक्षा गांवों और कसबों में मलेरिया अधिक होता है। प्रायः देखा जाता है कि जिस वर्ष ग्रीष्म ऋतु का प्रकोप होता है, और वृष्टि वेग से होती है, उस वर्ष बीमारी भी बलवती होती है।

हम बता चुके हैं कि मलेरिया मच्छरों के द्वारा फैलता है। मच्छर ऐसे व्यक्ति को, जो जाड़े के बुखार में ग्रस्त होता है, काटते हैं, और उसके रक्त को, जिसमें मलेरिया के रोगाणु भरे होते हैं, पीते हैं। यह मच्छर वहाँ से उड़ कर किसी अन्य व्यक्ति को काटते हैं। और मलेरिया के कीड़ों को उसमें डाल देते हैं।

मच्छर सदा ऐसे स्थान पर इकट्ठे होते हैं, जहाँ अन्धकार हो, वायु व धूप का यथेष्ट प्रवेश न हो, या तरी हो, या पानी हो।

मलेरिया से बचने का सुगम उपाय यह है कि मच्छरों से पूरी रक्षा का प्रबन्ध हो। प्रथम तो मच्छरों को पैदा ही न होने देना चाहिए, जिसका विस्तृत विवरण तीसरे भाग में मिलेगा। दूसरे यह है कि रात को नंगे देह न रहे। मलेरिया से बचने का उपाय यह है कि, मोटे ऊनी मोजे और वस्त्र धारण किए जाएँ, और सोते समय शरीर पर तेल मर्दन कर लिए जाएँ, महीन जाली की मच्छरदानी लगा कर सोना चाहिये।

नीलगिरी, दारजिलिंग, ब्रह्मा, व लंका इत्यादि में एक वृक्ष होता है, जिसका नाम "सिनकोना" है, यह वृक्ष पहिले पहल दक्षिणी अमरीका से लाया गया था, इसकी छाल से एक सत्त बनाया जाता है, जिसका नाम "कुनैन" है, कुनैन मलेरिया के लिए रामबाण औषध हैं। कुनैन अनेक प्रकार की मिलती है। कुनैन का अर्क, कुनैन की गोली, कुनैन का चूर्ण, कुनैन की बट्टी आदि। इसका सेवन मलेरिया को रोकता है। कुनैन चखने में कड़वी होती है, परन्तु जूड़ी के लिए उत्तम औषधि है।

पाँच पाँच ग्रेन दोनों समय काफ़ी है। मलेरिया की दशा में यह मात्रा दुगनी कर दी जाए। तीन वर्ष तक की आयु के बच्चे के लिए एक ग्रेन कुनैन दिन में पाँच मात्रा करके और तीन से लेकर दश वर्ष की आयु के लिए २ या ३ ग्रेन दिन में पाँच बार सेवन कराना चाहिए। ओसरी आने के दिन, रात्री समय तो रेंड के तेल में या किसी नमक का जुल्लाब लिया जाए, और ओसरी से ६ घंटे पूर्व १५ ग्रेन कुनैन खा ली जावे।

अभ्यास

(१) मलेरिया किस प्रकार का रोग है और कैसे फैलता है?

(२) जूड़ी ज्वर के रोगी की पूरी दशा वर्णन करो।

(३) मलेरिया का रोग किन देशों में होता है, और उसकी क्या विशेषता है?

(४) भारत में जाड़ा बुख़ार किस ऋतु में प्रकोप करता है और कैसे स्थान पर?

(५) मच्छर कैसे स्थान पर पाये जाते हैं?

(६) मलेरिया से बचने के कितने उपाय हो सकते हैं?

(७) मच्छरों को मारने और उनके दूर करने के कौन से उपाय हैं?

(८) मच्छरों की विशेषता वर्णन करो, वह कैसे उत्पन्न होते हैं और बढ़ते हैं?

(९) मच्छरों से बचने के क्या उपाय हैं?

(१०) तालाबों और गड्ढों से मच्छरों को दूर करने के क्या उपाय हैं?

(११) जाड़े के बुख़ार की क्या औषधि है?

ब—उदर-कृमि या नन्हें केंचुए

हुकवर्म या उदर-कृमि एक प्रकार के आकार के सूक्ष्म कीड़े होते हैं, जो मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके रोग उपजाते हैं। यह रोग भारत में बंगाल, बिहार, उड़ीसा और मदरास में अधिक होता है। युक्तप्रान्त (यू० पी०) में उसके रोग देखे जाते हैं।

यह कीड़े मनुष्य के शरीर में, पट्ठों के द्वारा या पानी और सड़ी हुई तरकारियों के द्वारा जा पहुँचते हैं, नर कीड़े का डील डौल लगभग १० मिलिमीटर लम्बा, और अर्द्ध मिलिमीटर मोटा होता है। मादा नर से किंचित लम्बी होती है। इन कृमियों के छः दाँत होते हैं, जिन की बनावट साँप के दाँतों की भाँति टेढ़े हुक की तरह होती है।

खाल के भीतर घुस कर यह कीड़े शरीर में पहुँचते हैं, और पट्ठों के द्वारा फेफड़े में पहुँच जाते हैं। फेफड़ों से वायु की नली में होते होते ऊपर की ओर चढ़ते हैं। इस नाली के मुख पर पहुँच कर आहार की नाली में प्रवेश करते हैं। उसी मार्ग से फिर नीचे उतरते हैं और आमाशय से लाँघते हुए, सात आठ दिनों में आँतों में पहुँच जाते हैं लघु अंत्रियों के बीच के भाग में पहुँच यहीं डेरा डालते हैं, यही उनका क्रीड़ा क्षेत्र है। पाँच सप्ताह में इन केंचुओं के अंडे खाकी रंग के होते हैं, इन अण्डों से एक दिन में बच्चा निकल आता है। और ४ या ५ दिनों में बढ़ कर जवान हो जाता है।

यदि किसी भाँति बच्चे भूमि या पानी पर आजाएँ तो महीनों जीते रहते हैं, भूमि पर चलते फिरते हैं और पानी पर तैरा करते हैं।

एकस्थर्न जिस स्थान पर मनुष्य देह में प्रवेश करता है, वहाँ पहिले खुजली जान पड़ती है, पुनः फोड़ा हो जाता है, और कीड़ा भीतर ही भीतर रक्त में पहुँच जाता है।

यह कीड़े जोंक की भाँति आँतों में चिपक जाते हैं, और रक्त चूसते रहते हैं। इससे आँतों में घाव हो जाता है, रोगी का मुख पीला पड़ जाता है, चित्त सुस्त और म्लीन रहता है। पाँवों और पेट में वर्म हो जाती है हृदय का बायाँ भाग बढ़ जाता है। हृदय में व्याधि हुआ करती है। धड़कन पैदा हो जाती है, कलेजे का रंग पीला पड़ जाता है, गुर्दों पर चर्बी छा जाती है। आमाशय की नालियों और रुधिर की धमनियों पर विषैला प्रभाव पड़ता है। भूख रुक जाती है, पेट के ऊर्ध्व भाग में पीड़ा होती है। जी मतलाया करता है, कै हो जाती है, दस्त आने लगते हैं, दस्तों में कीड़े निकलते हैं, यदि पाखाना की सावधानी रक्खी गई तो यह क्षण भर में मर जाते हैं, असावधानी से हमारे पीने के पानी में पहुँच जाते हैं, जिस मिट्टी में यह कीड़े होते हैं, यदि इससे बरतन मांजे जाएँ अथवा और कुछ काम लिया जाए तो यह कीड़े हाथ के द्वारा देह में घुस जाते हैं, या हमारे खाने पीने की वस्तुओं में पहुँच जाते हैं। तरकारियों में यह कीड़े विष्ठा के द्वारा पहुँचते हैं।

यह रोग भी ऐसे ही देशों में पाया जाता है, जहाँ पर मलेरिया के कीटाणु पाए जाते हैं। ऐसे स्थानों में नंगे पाँव चलना जोखिम होता है। क्योंकि यह कीड़े पैरों के द्वारा शरीर के भीतर घुस जाते हैं। ऐसे स्थानों की मिट्टी निकाल करके उस पर चूना बिछा देना चाहिए। हुकवर्म के रोगियों को खुले मैदान में शौच से निवृत्ति होने के लिये न जाना चाहिए। इससे रोग फैल जाता है।

हुकवर्म के रोग के लिए यूकलिपटिस, रेंडी के तेल का मिश्रण, थीमल, चेएट्रूडियम, इत्यादि का प्रयोग लाभ करता है। रोगी को पहिले दो दिन तक कुछ खाने को न दिया जाए। उसके पश्चात दो-दो घण्टे के अन्तर पर १० बजे दिन तक ३० ग्रेन थीमल सेवन कराई जाए और दोपहर को रेचक औषध दी जाए। इस उपचार से केंचुए पेट में मर जाते हैं। और दस्तों द्वारा गिर जाते हैं॥

अभ्यास

(१) हुकवर्म क्या वस्तु है, और यह रोग कैसे पैदा होता है?

(२) हुकवर्म का वर्णन करो और बताओ कि मनुष्य के शरीर में कैसे पहुँच जाते हैं और क्योंकर पोषण पाते हैं?

(३) हुकवर्म का लक्षण क्या है, और उनका प्रभाव देह पर कैसा होता है?

(४) हुकवर्म का रोग किन किन स्थानों पर होता है, और उसकी सावधानता किस प्रकार हो सकती है।

(५) हुकवर्म की क्या चिकित्सा है?

Printed by L. Moti Ram Manager, at the Mufid-i-'Am Press, situated at Chatterji Road, Lahore, and published by Rai Sahib Lala Sohan Lal, Managing Proprietor, Rai Sahib M. Gulab Singh &

Paper used for Text, White Printing 20×30=28 lb.
..   ..   Cover, Coloured   20×30=60 lb